यागमयी साधना

पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज
के
प्रवचनों का सङ्कलन

SMC Members .... Registered (Yes/No) ....

Principal Name .... Qualify & Tech Exp. ....

Correspondent Name ....

Financial Position (Last Two Years)

Yr. .... Deficit .... Surplus .... Yr. .... Deficit .... Surplus ....

Pre Requsite for Affiliation

Whether the School is recognised by State Govt. (Yes/No) ....

The NOC is obtained from State Govt. (Yes/No) .... NOC No. & Date ....

Whether school has two acres or more land (Yes/No) .... Total Land ....

The land is on leased/owned .... Validity of lease in years ....

Teachers have prescribed qualify. (Yes/N[illegible] Trained .... Un-trained ....

यागमयी साधना

पूज्यपाद ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज

के

प्रवचनों का सङ्कलन

प्रकाशक

वैदिक अनुसन्धान समिति (पञ्जी.)

नयी दिल्ली

प्रकाशक : **वैदिक अनुसन्धान समिति (पञ्जीकृत)**
२५१, दिल्ली गेट, नयी दिल्ली-११० ००२
दूरभाष : ३२८१६१६, ३२८५०००

प्रतियाँ : ११००

मूल्य : 25/- (पच्चीस रुपये मात्र)

प्रथम संस्करण : फरवरी, १९९९

शब्द-संयोजक : **अङ्कित कम्प्यूटर्स**
गंङ्गा विहार, शाहदरा, दिल्ली-११० ०९४
दूरभाष : २१८८५२२

मुद्रक : **नवप्रभात प्रिंटिंग प्रेस**
बलबीर नगर, शाहदरा, दिल्ली-११० ०३२
दूरभाष : २२८५७५३

प्राक्कथन

वेद, याग और योग की पावन भूमि आर्यावर्त में परम्परागतों से समय-समय पर ऋषियों और दिव्यात्माओं का अवतरण होता रहा है। दर्शन की भाषा में अवतरण का कारण, समर्थ आत्माओं के दिव्य-चित्तमण्डल में विश्व-कल्याण से जुड़े महान् संस्कारों का चित्रण होना, होता है। ज्ञान और प्रयत्न के क्षेत्र में पूर्वजन्म-संगृहीत आदि-ऋषि-संस्कारों के महान् आश्चर्य, ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज (आदि ब्रह्मा के वरिष्ठ शिष्य, श्रृंगी ऋषि की आत्मा) के रूप में एक दिव्यात्मा, वेदज्ञान, योग, दर्शन, वैदिक इतिहास और यागों के दिग्दर्शन के लिये अवतरित इस काल में भी हुई। एक विशेष प्रक्रिया में, समाधि में जाकर योगसिद्धात्माओं को सम्बोधित करते हुए इन्होंने असंख्य दिव्य प्रवचन किये। इनके प्रवचनों में सम्पूर्ण मानवता के कल्याण के लिये अभीष्ट साकल्य उपलब्ध है। वैदिक अनुसंधान समिति ने इनके दिव्य-प्रवचनों को जनकल्याण के लिये टेप रिकार्ड का कार्य किया और अधिकांश प्रवचनों को पुस्तकीय रूप में प्रकाशित भी किया है। इसी श्रृंखला में, 'यागमयी साधना' विषय पर यह पुस्तक प्रस्तुत है।

यूं तो इनके एक-एक प्रवचन में गागर में सागर-भरण की कल्पना चरितार्थ होती है और दिव्यामृतमयी ज्ञान-धारा निस्यन्द होती है, जिसमें अवगाहन कर जिज्ञासु, अविद्या-अधंकार, दुःख-दारिद्र्य, प्रमाद और अकर्मण्यता आदि दोषों का निवारण कर उत्साह, सुख-समृद्धि, मानवीयता, ज्ञान-कर्मकाण्ड और यौगिकवाद का पथगामी होकर पुरुषार्थ-चतुष्ट्य को प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है परन्तु, 'यागमयी साधना' के रूप में प्रस्तुत

पुस्तक याज्ञिक को यज्ञ के मार्ग से योग में ले जाने की पर्याप्त सामग्री उपलब्ध कराती है।

यज्ञ में पञ्चमहाभूतों की समन्वित पूजा से याज्ञिक किस प्रकार भौतिक विद्या से आध्यात्मिक विद्या का पथगामी बनता है, यह विषय इस पोथी में सङ्कलित प्रवचन रूपी मनकों का सूत्र बनकर मुखरित हुआ है। पुस्तक के पूर्व भाग में प्रवचनों का संकलन, जहां याग-परिचय, पञ्चयज्ञ, और विभिन्न यागों के वैज्ञानिक निरूपण का समष्टि रूप प्रस्तुत करते हुए यज्ञमान को साधना का मार्ग दिखाता है, वहीं उत्तर भाग, आत्मा का विष्णु रूप, अष्टांग योग, योगी की उत्थान-गतियाँ और पञ्चकोषों के यौगिक ज्ञान से साधक का मोक्षपथ प्रशस्त करता है।

सङ्कलित प्रवचनों में, महर्षि याज्ञवल्क्य, महर्षि कागभुषुण्ड, महर्षि सोमकेतु, महर्षि वशिष्ठ, महर्षि लोमश, महर्षि विश्वश्रवा, भगवान राम, महर्षि वैशम्पायन, महर्षि भारद्वाज, महात्मा दधीचि, माता मदालसा, महर्षि श्वेतकेतु, महर्षि विभाण्डक आदि ऋषियों द्वारा ऋषि-आश्रमों में आयोजित ऋषि-मुनियों की सभाओं में वेदमन्त्रों में प्रतिपादित याग-योग विषयों पर किये गये उनके क्रियात्मक अनुसन्धान का जीवन्त-चित्रण तो हमें उन्हीं के सानिध्य में ही उपस्थित कर देता है।

पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज का सारा जीवन यागों के प्रचार-प्रसार में लगा रहा। उन्होंने ग्राम-ग्राम, नगर-नगर, भ्रमण करके योग मुद्रा में असंख्य दिव्य प्रवचन किये, हज़ारों वेद-पारायण यज्ञों का आयोजन करवाया, अनेक श्रद्धालुओं को पञ्चयागों में योजित किया और अनेकों के हृदय में यागों की भूमिका बनाई। उन्होंने बरनावा, मेरठ में लाक्षागृह आश्रम को एक भव्य याग-स्थली के रूप में विकसित किया, जहाँ,

समय-समय पर वर्षभर चतुर्वेद और वेद-पारायण यज्ञों का आयोजन होता रहता है। परम्परानुसार, इस वर्ष होलिका पर्व से पूर्व आयोजित चतुर्वेद पारायण महायज्ञ के शुभावसर पर यज्ञप्रेमियों को समर्पित यह पोथी, 'यागमयी साधना' प्रस्तुत है।

वैदिक अनुसन्धान समिति उन सभी महापुरुषों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती है, जिन्होंने प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन के लिये तन-मन-धन से सात्विक सहयोग प्रदान किया है। समिति प्रभु से उनके दीर्घ-जीवन में समृद्धि और संवृद्धि की कामना करती है !

●●

यागमयी साधना

विषयानुक्रमणिका

□□□

श्रद्धादान-बोध

पुस्तक को प्रकाशित कराने में दानदाताओं का विशेष सहयोग रहता है। इस पुस्तक की प्रकाशन-प्रस्तुति में भी अनेक दान-दाताओं ने उन्मुक्त हृदय से अपनी श्रद्धाहुति द्रव्य-दान रूप में दी है। उनमें से विशेष रूप से उल्लेखनीय कुछ महापुरुषों का विवरण इस प्रकार है—

क्रं.सं.	नाम व पता	राशि
१.	श्री बृज खोसला जी ग्रीन पार्क, (वि.) नयी दिल्ली।	२१००/–
२.	श्रीमती राधा गुप्ता जी डब्ल्यू. ज़ेड.-४१, लाजवन्ती गार्डन, नयी दिल्ली।	१०००/–
३.	श्री एन.डी. गर्ग जी ई-४५, लाजपत नगर-III, नयी दिल्ली।	१०००/–
४.	श्री ओमप्रकाश शर्मा जी नानौता, सहारनपुर, उ.प्र.।	५००/–
५.	श्री पवन कुमार सिरोही जी, ताजपुर, बुलन्दशहर (उ.प्र.)	(१०००)
	– अपनी दादी श्रीमती तपेश्वरी देवी जी की स्मृति में	५००/–
	– अपनी माता श्रीमती सरदारी देवी जी की स्मृति में	५००/–
६.	श्री मनीष त्यागी जी निवाडी, ग़ाज़ियाबाद, उ.प्र.।	५५१/–
७.	सामूहिक दान के-३, लाजपत नगर-III, नयी दिल्ली।	५०१/–
८.	श्री जे. पी. गुप्ता जी पंचशील पार्क, नयी दिल्ली।	५०१/–
९.	एच.पी.टी. आल इंडिया रेडियो, खानपुर, दिल्ली।	४४५

पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्ण दत्त जी महाराज
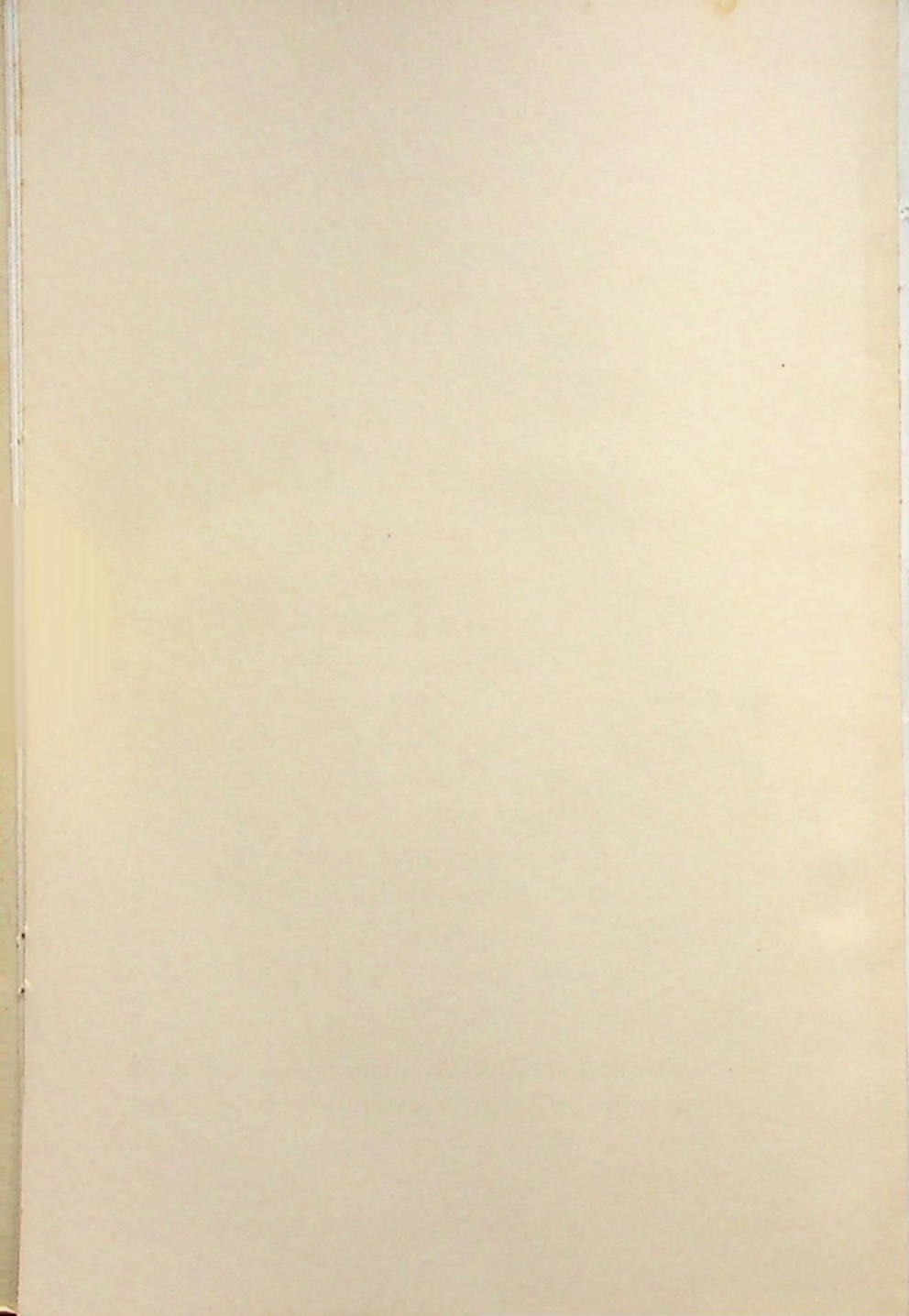
पूज्यपाद ब्र० कृष्णदत्त जी महाराज

उत्तर प्रदेश के ग़ाज़ियाबाद जनपद में मुरादनगर के निकट स्थित खुर्रमपुर-सलीमाबाद गाँव में, एक निर्धन, अशिक्षित, कबीर पन्थी जुलाहे के घर इनका जन्म हुआ। उल्टी प्रक्रिया में, अर्थात् उल्टे पैरों पैदा होने पर नाम रखा गया कृष्णदत्त। गाँव के अशिक्षित परिवेश में इनके जन्म समय का कोई निश्चित सङ्केत नहीं मिलता। फिर भी उनके परिवार के सदस्यों, उनके गाँव के समवायी शिक्षित महानुभावों के सङ्केतों और अन्य तथ्यों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि इनका जन्म सन् १९४२ के उत्तर चातुर्मास्यकाल में हुआ।

कहते हैं, जब पूज्य ब्र० जी लगभग दो मास की अवस्था के ही थे, एक दिवस उनकी माता ने उन्हें शवासन में लेटा दिया। कुछ समय उपरान्त शिशु की गर्दन दोनों ओर हिलने लगी और होठ फड़फड़ाने लगे। इस अवस्था में शिशु को पाकर परिवार के सदस्य चकित हुए। इस क्रिया की पुनरावृत्ति होने पर गाँव के ओझा-पण्डित का सहारा लिया गया और भूत-प्रेत का प्रभाव मानकर तदनुरूप शिशु का उपचार प्रारम्भ हो गया और अनेक प्रकार से यातनाएँ दी जाने लगीं। परन्तु उस विशेष अवस्था में जाने की घटनाएँ बढ़ती रहीं। आयु बढ़ने के साथ वाणी स्पष्ट होने पर बाल्य ब्र० जी उस विशेष अवस्था में जाते तो मन्त्र-पाठ और कथा-वाचन स्पष्ट सुनाई देते। आश्चर्य चकित ग्रामवासी गर्दन हिलने और कथा सुनने के इस विचित्र अनुभव को अपने-अपने आधार पर ग्रहण करने लगे।

छः वर्ष की आयु में उन्हें भयानक चेचक निकली। उन्हें शवासन में लिटाये रखा जाता और उस विशेष अवस्था में जाकर उनके प्रवचन होते ही रहते थे। दोनों ओर गर्दन हिलने से उनका पूरा मुख-मण्डल और सिर छिल-छिल कर फोड़े की तरह बन गये थे। पड़ौस के बूढ़े लोगों को अभी भी वह समय याद है और कोई यह नहीं कहता था

कि बालक कृष्णदत्त बच जायेगा। परन्तु प्रभु की कृपा से उसकी अमूल्य निधि मानव-कल्याण के लिए सुरक्षित रही।

सामान्यतः, उन्हें करवट से ही सुलाया जाता था, लेकिन जब कभी शवासन की स्थिति बमती तो कुछ समय के पश्चात् उसी प्रकार गर्दन हिलने लगती और कथा प्रारम्भ हो जाती। धीरे-धीरे गाँव के लोगों को उनकी कथाएँ समझ आने लगीं। उनके पिता उनकी इस अवस्था में जाने से बहुत चिन्तित रहते थे। जब वे ७ वर्ष की अल्पायु के ही थे, तो उनके पिता ने अपने गाँव के चौधरी खचेड़ू सिंह और चौधरी इन्द्रराज सिंह त्यागी के यहाँ उन्हें नौकर रख दिया। वहाँ ब्र० जी, पशुओं को जङ्गल में चराना, घास लाना, पशुओं का चारा, पानी भरना मेहमानों की सेवा करना, हुक्का भरना, पैर दबाना, कोल्हू में गन्ना डालना, गुड़ बनाना आदि काम करते थे। वहाँ भी जब कभी वह विशेष अवस्था बनती तो कथा प्रारम्भ हो जाती थी। इस प्रकार उनका सामान्य जीवन औपचारिक शिक्षा से वञ्चित रहा।

पशु चराते हुए साथी ग्वाले, बालक ब्र० की इच्छा न होते हुए भी बल से, हाथ, पैर तथा सिर पकड़कर सीधा लेटाते और अपेक्षित रूप में गर्दन हिलने एवं कथा सुनने का मनोरञ्जन करते थे। धीरे-धीरे गाँव के आसपास के अन्य गाँवों में विचित्र बालक का तथाकथित परिचय बढ़ने लगा। ग्राम के विवाहादि उत्सवों में विचित्र बालक को बुलाया जाने लगा और दिव्य प्रवचन क्रिया को मनोरञ्जन का साधन बनाया जाने लगा।

अन्य लोगों की तरह ब्र० जी भी इस अवस्था को व्याधि अथवा अन्य प्रभाव ही मानते थे। उनके परिवार के सदस्य अनेक प्रकार से उन्हें प्रताड़ित करते थे। ब्र० जी कष्टों से परिपूर्ण अपने जीवन को भार रूप में व्यतीत कर रहे थे। एक दिवस, इनकी कथा-प्रक्रिया के पश्चात् पिता द्वारा अत्यधिक पिटाई किये जाने पर इनके मन में विचार आया कि यहाँ कष्ट पाते रहने से तो अच्छा है कहीं जाकर अपना

इलाज कराया जाये, अन्यथा जीवन समाप्त कर दिया जाये। लगभग १५ वर्ष की अवस्था में, शीत काल की मध्य रात्रि में, लगभग एक बजे, अपने परिवार और गाँव को छोड़कर भाग खड़े हुए। उपचार की आशा में एक-डेढ़ मास इधर-उधर भटकते हुए, बरनावा में श्री धर्मवीर त्यागी के घर जा पहुँचे। त्यागी जी उनके पूर्व नियोक्ता इन्द्रराज सिंह से सम्बन्धित थे और उनका परिवार इन्हें जानता था। वहाँ उनकी कथा होती रहती। कई मास कथा चलती रही। ग्रामीण लोग आते और सुनते रहते थे। कुछ श्रद्धा से समझते हुए सुनते और अन्य कौतुहल से।

बरनावा (वारणावत,) मेरठ-जनपद में हिण्डन और काली नदी के सङ्गम पर स्थित है। यहीं महाभारत काल का ऐतिहासिक 'लाक्षागृह' (लाखामण्डप) का टीला है, जहाँ कौरवों ने पाण्डवों को अग्नि में जलाने का षड्यन्त्र रचा था और सौभाग्य से पाण्डव वहाँ से बच निकले थे। यह टीला बड़े विशाल रूप में आज भी विद्यमान है। इसी स्थान से महर्षि महानन्दजी का सम्बन्ध ब्र० जी के भौतिक-पिण्ड से हुआ, ऐसा बरनावा निवासियों से मालूम हुआ। उनका कथन है कि जिस समय प्रारम्भ में यहाँ ५-६ मास तक कृष्णदत्त जी की कथा हुई तो कभी कथा में महानन्द मुनि का कोई सङ्केत, अथवा नामोच्चारण नहीं हुआ था। एक दिन ब्र० जी अपने चार साथियों के साथ घूमते हुए इस लाखामण्डप को देखने गये। थोड़ी देर घूम-फिर कर आ गये और उसी दिन रात्रि की कथा में महानन्द जी ने यह कहा कि गुरु जी आज तो आप हमारे आश्रम में गये थे। तब से उनके प्रवचनों में महानन्द जी के प्रश्नोत्तर होने लगे।

उनके प्रवचनों से स्पष्ट हुआ कि ब्र० कृष्णदत्त जी पूर्व जन्मों में शृंगी ऋषि रहे हैं और महानन्द जी उनके सूक्ष्मशरीरधारी, योगसिद्ध शिष्य रहे हैं। यह भी ज्ञात हुआ कि महाभारत की लाक्षागृह-अग्निकाण्ड-स्थली पूर्व समयों से महानन्द जी की तपोभूमि रही है। और पू० ब्र० कृष्णदत्त जी के यहाँ पदार्पण तक महानन्द जी श्राद्धरूप में तपस्या करते रहे।

ब्र० जी के हृदय में इस टीले को आश्रम में परिवर्तित करने की प्रेरणा बलवती होने लगी। लोग इनके प्रवचनों की सार्थकता समझने लगे और धीरे-धीरे इनकी लोकप्रियता बढ़ने लगी। समीपवर्ती गाँवों में उन्हें प्रवचन के लिये बुलाया जाने लगा। इन्हीं दिनों यज्ञों में उनकी रुचि बढ़ने लगी और जिस परिवार में प्रवचन/कथा करते, वहाँ यज्ञ करने की प्रेरणा भी देते। विशेष रूप से उनकी विदाई के समय यज्ञ होने लगे। तभी ब्र० जी ने लाक्षागृह टीले पर भी यज्ञों के आयोजन की प्रेरणा दी।

आर्य जगत् के अनेक प्रतिष्ठित विद्वान इस अशिक्षित ग्रामीण युवक की विचित्र अवस्था, दिव्य प्रवचन-शैली और विलक्षण वैदिक प्रभाव को देखकर इनकी ओर आकर्षित हुए। उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा से सम्बन्धित आचार्य सुरेन्द्र शर्मा गौड़ जी, श्री ब्र० कृष्णदत्त जी की वेलक्षण प्रवचन क्रिया एवं प्रवचन शैली से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने साप्ताहिक पत्र, 'आर्यमित्र' में इनके विषय को प्रकाशित कराया। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को लिखा और वैदिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए स्पष्ट किया कि उनकी यह अवस्था योग की दिव्य मुद्रा है, समाधि है।

सन् १९५८-५९ ई० में, वैद्य, पं० प्रकाश चन्द्र जी शास्त्री ने विनय नगर के आर्य समाज प्रधान को ब्र० जी के विषय में बताया और इस प्रकार ब्र० जी को दिल्ली बुलाने की योजना बनने लगी। अन्ततः शास्त्री जी, आकाशवाणी के डॉ० बनवारी लाल जी शर्मा एवं अन्य महानुभावों के प्रयत्न से दिनाङ्क २८ दिसम्बर ,१९६१ को ब्र० कृष्णदत्त जी महाराज आर्यसमाज, विनय नगर में पधारे। अगले दिन, वहाँ, भारत सेवा समाज के स्थान पर इनका प्रवचन लगभग २५० जिज्ञासुओं ने सुना और मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। दिल्ली में कई दिन तक प्रवचनों के कार्यक्रम होते रहे। आत्मा-परमात्मा, प्राण की महत्ता, अनावृष्टि-अतिवृष्टि आदि अनेक विषयों पर इनके दिव्य प्रवचन हुए। अनेक प्रतिष्ठित विद्वानों,

दार्शनिकों और मनोवैज्ञानिकों ने इनके प्रवचनों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सुना और गम्भीर विश्लेषण हुआ।

१ जनवरी, १९६२ को इनके प्रवचन को प्रथम बार टेप रिकॉर्ड किया गया। प्रत्येक दिन नवीन् विषय होता था। धीरे-धीरे प्रवचनों को सुनने वालों की संख्या बढ़ने लगी। ७ जनवरी को एक विशेष यज्ञ के पश्चात् लगभग दस हज़ार लोगों की भव्य उपस्थिति में प्रवचन हुआ। सौल्लास निर्णय लिया गया कि इनके बहुमूल्य प्रवचनों की निधि को रिकार्ड किया जाना चाहिये और इनकी यौगिक क्रिया एवं प्रवचन-सामग्री पर अनुसन्धान होना चाहिये। शीघ्र ही 'वैदिक अनुसन्धान समिति, नई दिल्ली' का गठन किया गया। इस प्रकार प्रवचन टेप होने लगे और प्रकाशन कार्य प्रारम्भ हो गया। उधर ब्र० जी के लिये देश के कोने-कोने से निमन्त्रण आने लगे और ब्र० जी का जीवन यज्ञों और प्रवचनों में अत्यन्त व्यस्त हो गया।

ब्र० जी की प्रेरणा से लाक्षागृह टीले पर एक यज्ञशाला का निर्माण कराया गया और लाक्षागृह को एक आश्रम का रूप दिया गया। तदनन्तर, बरनावा आश्रम में, हर वर्ष शिवरात्रि एवं होलिका पर्व के मध्य दिनों में लगातार आठ दिनों का पूज्य ब्र० जी की प्रेरणा से एवं जनता जनार्दन के सहयोग से, चतुर्वेद पारायण यज्ञों का आयोजन हो रहा है। और इसी प्रकार रक्षाबन्धन के दिवस सामवेद परायण यज्ञ सम्पन्न होता है। पिछले कुछ वर्षों से आश्विन मास के कृष्णपक्ष की तृतीया को पूज्य ब्र० जी के जन्म-दिवस के रूप में मनाया जा रहा है और इस दिन भी सामवेद पारायण यज्ञ का आयोजन होता है। आजकल आश्रम में पाँच भव्य यज्ञशालाएँ हैं, जहाँ हज़ारों-हज़ारों की संख्या में वैदिक श्रद्धालु यज्ञ एवं प्रवचनों के दिव्यामृत से लाभान्वित होते हैं।

ब्र० जी की ही प्रेरणा से लाक्षाग़ृह आश्रम में निःशुल्क वैदिक शिक्षा के लिए एक संस्कृत विद्यालय की स्थापना हुई। ब्र० जी के योग सिद्धात्मा शिष्य ही के नाम पर विद्यालय का नामकरण हुआ। सन् १९६५ में

लाक्षागृह-आश्रम में यज्ञों एवं शिक्षण के प्रबंधन के लिए 'श्री गांधी धाम समिति' नाम से एक समिति का गठन हआ। शनै-शनै, यथापेक्षा, यहाँ पर्याप्त कमरे, गऊशाला, खेती के लिए पर्याप्त भूमि तथा ट्यूबवेल और अन्य साधनों का प्रबन्ध हो गया।

सम्प्रति, इस संस्कृत महाविद्यालय में लगभग १५० छात्र, वैदिक शिक्षण-पद्धति के आधार पर, आचार्य स्तर तक विभिन्न विषयों में प्रबुद्ध अध्यापकों द्वारा शिक्षार्जन कर रहे हैं। आज भी यहाँ के विद्वान आचार्य, देश के कोने-कोने में याग करवा रहे हैं और ब्र० जी द्वारा वेद एवं यज्ञ-प्रचार की ज्योति को प्रभावी रूप से देदीप्त कर रहे हैं।

पूज्य ब्र० जी की योग मुद्रा में जाने की प्रक्रिया पर गम्भीर अनुसन्धान की आवश्यकता है। यूं तो इनके प्रवचनों में ही महर्षि महानन्द जी ने इस क्षेत्र में एवं पूज्य ब्र० जी से जुड़े सभी प्रश्नों पर व्यापक प्रकाश डाला है और यह एकदम स्पष्ट है कि पूज्य ब्र० जी आदि ब्रह्मा के वरिष्ठ शिष्य शृंगी ऋषि की आत्मा थे और इनका यह जीवन आदि ब्रह्मा जी के एक श्राप का परिणाम था। त्रेता काल में इनके ही द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ करवाने से भगवान राम अवतरित हुए थे। परन्तु उस विशेष समाधि अवस्था में दिये जाने वाले इनके प्रवचन, अन्तरिक्ष-स्थित ऋषि-मण्डल में सूक्ष्म शरीरधारी योगसिद्ध आत्माओं को सम्बोधित होते थे और उनका यह शरीर एक दिव्य-यन्त्र की भान्ति उस आकाशवाणी से पृथ्वीमण्डल पर हम लोगों को प्रेरणार्थ योजित करता था। उनकी यह प्रवचन-प्रक्रिया यौगिक थी, जिसे प्राणसत्ता को जांनने वाले ही ग्रहण कर सकते हैं। अनेक लोगों ने इनकी यौगिक प्रक्रिया पर अनुसन्धान किये हैं।

१६६४ में, प्रतिष्ठित योग विद्वान् स्वामी योगेश्वरानन्द जी ने इनकी योग-मुद्रा एवं प्रवचन प्रक्रिया पर विशेष अनुसन्धान किये और अपने यौगिक बल से इनकी प्रतिभा को जाना। स्वामी प्रभु आश्रित जी, स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती, डॉ० रणवीर सिंह शास्त्री विद्यावाचस्पति, पण्डित धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड, महान् वैयाकरण एवं दार्शनिक डॉ० श्री हरिदत्त

जी शास्त्री, विश्वनाथ प्रसाद जी, डॉ० देशमुख महोपाध्याय, श्री पं० वीरसेन जी वेदश्रमी आदि अनेक विद्वानों ने ब्र० जी की योग-मुद्रा एवं प्रवचन प्रक्रिया पर अनुसन्धान किये और अपनी शुभ सम्मतियां प्रकट कीं।

१६६६ में, माननीय विज साहब ब्र० जी को हैदराबाद ले गये। वहाँ तत्कालीन शिक्षामन्त्री एवं भूतपूर्व प्रधानमन्त्री श्री नरसिंहाराव जी ने खण्डुराव देसाई एवम् अन्य राजनीतिज्ञों के साथ ब्र० जी के प्रवचनों का आयोजन करवाया। 'राजा का धर्म' विषय पर हुए एक प्रवचन को सुनकर सब आश्चर्य चकित रह गये। भूतपूर्व मन्त्री श्री बलराम जाखड़ एवं भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के सुपुत्र डॉ० मृत्युञ्जय प्रसाद जी ने भी इनके प्रवचनों को सुना है और आश्चर्यबद्ध होकर प्रशंसा की है।

इनकी योग मुद्रा में जाने की प्रक्रिया बड़ी विचित्र थी। प्रवचन से पूर्व इन्हें कोई ज्ञान नहीं होता था कि ये किस विषय पर प्रवचन करेंगे और प्रवचन के उपरान्त भी यही दशा बनी रहती थी। उन्हें ज्ञान नहीं रहता था कि उन्होंने कब और कैसे क्या कहा। प्रारम्भ में ब्र० जी चादर लेकर शवासन में लेट जाते थे। चादर ओढ़ने का उद्देश्य बाह्य अशान्त प्रभाव से बचना था। ४-५ मिनट तक उन्हें सामान्य रहने का आभास रहता था। उसके बाद उन्हें पूर्व स्थिति का कोई ज्ञान नहीं रहता था। योगविदों के अनुसार, इसके बाद इनके प्राण एकीकृत होकर ब्रह्मरन्ध्रोन्मुखी हो जाते थे, और समाधि लग जाती थी। पूज्य ब्र० जी अन्तरिक्ष के किसी ऐसे मण्डल से सम्बन्ध स्थापित कर लेते, जहाँ योगसिद्ध आत्माएँ उनके पूर्व जन्मों के दिव्य ज्ञान की अपेक्षा में सभा योजित होती थीं। इस प्रकार, लगभग दस मिनट तक उस अवस्था में लेटे रहने के पश्चात् वे दोनों हाथों से चादर को मुख से उतारते थे और हाथों को वक्षस्थल पर विचित्र पाठ-मुद्रा में लाते थे। गर्दन के ऊपर का भाग दायें-बायें, दोनों ओर तीव्र रूप से गति करने लगता था, सम्भवतः यह प्राणों का सङ्घात था, और अति मधुर ध्वनि में मन्त्र-गायन प्रारम्भ हो जाता था।

मन्त्र गायन में वेद-मन्त्रार्थों की प्रतिभा का भान तो होता ही है, साथ ही वैदिकोत्तर काल में विकसित होने वाली किसी वेद-भाष्यी भाषा का बोध भी होता है। सम्भवतः यह ब्राह्मी का प्राचीन रूप है। मन्त्र-गायन की समीक्षा से ऐसा बोध भी होता है, जैसे उस काल में ऐसे विशिष्ट विद्यालय, अथवा गुरुकुल प्रणाली रही हो, जहाँ अपने प्रकार की ऐसी समवैदिकी भाषा का विकास होता रहा था। गायन तो तत्सम छन्दोबद्ध ही रहा है, परन्तु शब्द-रूप एवं मन्त्र-विन्यासं अपनी अलग विधा का बोध कराते हैं। लगभग दस मिनट तक मन्त्रोच्चारण चलता था। मन्त्रोच्चार के उपरान्त मनोहारी एवं मधुर ध्वनि में आशीर्वचन (जीते रहो!) सुनाई पड़ता था। और, 'देखो, मुनिवरो !' सम्बोधन के साथ, एक मनोहारी और वृद्ध ऋषि-तुल्य भाषा में लगभग ४० मिनट का ज्ञानगर्भित एवं विज्ञान पुष्ट प्रवचन होता रहता था। कभी-कभी प्रवचन की अवधि अधिक भी होती थी।

प्रवचन की धारा-प्रवाहिता, विषय-विन्यास एवं दर्शन का स्तर इतना उत्कृष्ट एवं वैज्ञानिक होता था कि जिसे सुनकर आज भी बड़े-बड़े विद्वानों का मस्तिष्क कल्पना में नृत्य करने लगता है। प्रवचन में इतनी सरसता और सात्विकता होती है कि अल्पज्ञ श्रोता विषय-सामग्री के ग्रहण स्तर में न होता हुआ भी, बन्धा हुआ सा रहता है।

प्रवचनों की विषय सामग्री, ऋषि-मुनियों के वैदिक, यौगिक एवं व्यावहारिक अनुभवों, दृष्टान्तों, मानव-धर्म और मानवीयता के तथ्यों से ओतप्रोत रहती है। सम्पूर्ण मानवता के लिये ग्राह्य वैदिक ज्ञान और आचरण की ये अनूठी चर्चाएँ, न केवल इतिहास, विज्ञान एवं दर्शन से जुड़ी गुत्थियों को सुलझाती हैं, बल्कि सम्प्रदायों, रुढ़िवादिता, साहित्य एवम् इतिहास के प्रक्षेपों से भ्रमित, आज के मानव को जीवन के सभी क्षेत्रों में आचरण योग्य विशुद्ध साकल्य भी उपलब्ध कराती हैं। प्रवचन की भाषा सुमधुर तत्सम हिन्दी रही है। कभी-कभी प्रवचनों की भाषा, संस्कृत भी रही है। कुछ प्रवचन तो पूर्णरूप से संस्कृत में ही हैं।

इनके प्रवचनों में तीन और आत्माओं—आदि ब्रह्मा (इनके पूज्यपाद

गुरुदेव), इनके शिष्य महर्षि लोमश मुनि और महर्षि महानन्द मुनि की वार्ताएँ भी आयी हैं। महर्षि महानन्द जी के तो इनसे प्रश्नोत्तर, प्रायः होते रहे हैं। यज्ञ की पूर्णाहुति के पश्चात् यजमान के लिए आशीर्वचनों और राष्ट्रवाद पर इनकी दिव्य टिप्पणियों से पूर्ण वार्ताएँ तो सर्व अपेक्षित रही हैं।

ब्र० जी की बढ़ती लोकप्रियता और प्रवचनों से पाखण्ड एवं रूढ़िवाद के युक्तियुक्त खण्डन के कारण अनेक बार उन पर शारीरिक हमले हुए। एक बार तो औषधि रूप में उन्हें कच्चा पारा खिला दिया गया, जिसके कारण उनका शरीर फोड़े-फोड़े हो गया और हृदय तथा फेफड़ों को गहरी क्षति पहुँची थी।

सामान्य अवस्था में, एक सामान्य से प्रतीत होने वाले ब्र० जी ने अपने छोटे से जीवन काल में ५००० के लगभग वेद पारायण यज्ञों का आयोजन करवाया, जिनमें लगभग ३५ चतुर्वेद पारायण यज्ञ हैं। आज के वाममार्ग काल में, ग्राम-ग्राम, नगर-नगर घूम कर इस महामानव ने महर्षि दयानन्द द्वारा पुनर्जागृत वेद एवं यज्ञ-प्रचार की ज्योति को हज़ारों-हज़ारों परिवारों में देदीप्यमान कर दिया। अनेक श्रद्धालुओं को 'दैनिक-यज्ञ' में योजित किया।

आजीवन ब्रह्मचारी रहकर सात्विक एवं सादा जीवन जीने वाले ब्रह्मचारी जी की निस्पृहता, निरभिमानता आदि सभी विचारशीलों को अत्यन्त प्रभावित करती थीं। उनकी विलक्षण स्मरण शक्ति और सबके प्रति अगाध प्रेम ने उन्हें 'सभी का अपना' बना दिया था।

यज्ञों के विस्तार की भूमिका बनाते हुए और अपने दिव्य यौगिक प्रवचनों द्वारा ब्रह्म-ज्ञान का प्रसारण करते हुए, यह दिव्यात्मा, १५ अक्तूबर १९९२ को ब्रह्म मुहूर्त के समय, ५० वर्ष की अवस्था में, ब्रह्म-लोक के लिए महाप्रयाण कर गयी। यद्यपि, पूज्यपाद ब्र० कृष्णदत्त जी, आज हमारे मध्य नही हैं, लेकिन, उनकी वेदवाणी, यज्ञों की भूमिका और उनकी दिव्य-प्रेरणाएँ, सर्वदा-सर्वदा, मानव-मात्र का मार्गदर्शन करती रहेंगी!

ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी के प्रवचनों से प्रकाशित पुस्तकें-

१. आत्म लोक — २५ रुपये
२. अलङ्कार व्याख्या — ३० रुपये
३. यज्ञ प्रसाद अर्थात् यज्ञ क महत्त्व — १६ रुपये
४. देवपूजा — १८ रुपये
५. रांमायण के रहस्य — २० रुपये
६. महाभारत के रहस्य — २० रुपये
७. महाराजा रघु का याग — २० रुपये
८. मोक्ष प्राप्ति का मार्ग — २० रुपये
६. वनस्पति से दीर्घ आयु — २० रुपये
१०. चित्त की वृत्तियों का निरोध — २५ रुपये
११. आत्मा प्राण और योग — २० रुपये
१२. पञ्च महायज्ञ — २० रुपये
१३. याग-मञ्जूषा — २५ रुपये
१४. अश्वमेध याग और चन्द्रसूक्त — ३० रुपये
१५. आत्म-दर्शन — २५ रुपये
१६. पुत्रेष्टि-याग और मातृ-दर्शन — २५ रुपये
१७. वैदिक प्रवचन (पुष्प ६२ तक) — ५ रुपये
१८. यौगिक प्रवचन माला (भाग १,२,३,४) प्रत्येक — ४० रुपये
१६. शङ्का निवारण — ७ रुपये
२०. वेद पारायण यज्ञ का विधि विधान — २५ रुपये
२१. यज्ञ एवम् औषधि विज्ञान — ३५ रुपय
२२. रावण का इतिहास — ३५ रुपये
२३. याग और तपस्या — ३५ रुपये
२४. अतीत का दिग्दर्शन—भाग १, २, ३, — (उपलब्ध नहीं)
२५. Yogic Wisdom of Ancient Rishies — (उपलब्ध नहीं)
२६. आत्मा व योग साधना . — (उपलब्ध नहीं)
२७. धर्म का मर्म — (उपलब्ध नहीं)

याग-प्रेरणा

ओ३म् आपायमा रेवः सुविश्चमानं रथं मृत्युयम्।
आपायमा धर्मश्चमं धर्मम्रेत माहं याहन्तनुः।।

देखो, मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में, उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा अनन्तमयी हैं और वे यज्ञोमयी स्वरूप हैं; याग उसका आयतन है, उसका गृह है, उसका सदन है और वह उसी में वास कर रहा है। क्योंकि हमारे यहाँ, जब भी ऋषि-मुनि एकान्त स्थलियों पर विद्यमान हो करके एक-एक वेदमन्त्र के ऊपर, जब विचार-विनिमय करने लगे तो उन्होंने एक-एक मन्त्र में ब्रह्माण्ड की विवेचना की है और ब्रह्माण्ड को और पिण्ड को, दोनों को, दोनों का उन्होंने समन्वय किया। और वह जो परमपिता परमात्मा अनन्तमयी जो ब्रह्माण्ड का सञ्चालक है, दोनों प्रकार के ब्रह्माण्ड का जो निर्माण करने वाला है, उसमें द्वितीयता नहीं। वह एकोकी से ही मानो देखो, उसका निर्माण करता है

अध्ययन के पश्चात् क्रियात्मक अपेक्षा

तो विचार आता रहता है कि ऋषि मुनि, जब भी अपनी एकान्त स्थलियों पर विद्यमान हो करके उस परमपिता परमात्मा की महती और अनन्तता के ऊपर विचार-विनिमय करने लगते हैं, तो मानो उसका अनन्तमयी जगत् एक मानवीयत्त्व में समाहित हो जाता है। हमारे यहाँ

याग के सम्बन्ध में, मेरे प्यारे महानन्द जी, मुझे और भी कहीं से यह प्रेरणा आती रहती है कि आज मैं याग के सम्बन्ध में अपने कुछ विचार व्यक्त करूँ। क्योंकि याग के सम्बन्ध में नाना विज्ञानवेत्ताओं ने बड़ी विचित्र-विचित्र उड़ानें उड़ी हैं। महर्षि भारद्वाज मुनि जैसे महापुरुषों ने और देखो उद्दालक गोत्र के ऋषियों ने बड़ी विशाल उड़ानें उड़ी हैं। और उन्होंने ऐसा ही नहीं कि वो एक वेदमन्त्र या दर्शनों की व्याख्या करते रहे हैं, उन्होंने उसको क्रियात्मकता में लाने का प्रयास भी किया है। क्योंकि मानव वही महान् होता है, जो अध्ययन करने के पश्चात् उसे क्रियात्मकता में लाने का प्रयास करता है। और **यदि वह उन दर्शनों का अध्ययन कर रहा है और यदि क्रियात्मक उसका जीवन नहीं है, उसके अनुमानों के अनुसार, तो मुनिवरो! देखो, वह जो अध्ययन की प्रतिक्रिया है, वह अपङ्ग बन जाती है।** तो उसे अपङ्ग नहीं बनाना है, उसे मानो अपने में धारणा में 'धारणं प्रवः', उसे धारण करना है और उसी के अनुसार अपने जीवन को अग्रणीय बनाना है

तो हमारे ऋषि-मुनि, बेटा! अपने ब्रह्मचारियों से भी अपनी वार्ता प्रकट करते रहते माता-पिता अपने पुत्रों से वार्ता प्रकट करते रहते, हमारे आचार्यों ने, बड़ी सुन्दर उपलब्धियाँ उनके जीवन में रही हैं कि वे जब अपने में क्रियात्मक कर्म करते थे, तो उनके गृह में आने वाली जो सम्पदा है अथवा जो प्रजा है, वह प्रजा उसी के अनुसार बरतती रहती थी। और, यदि क्रियात्मक उनका जीवन नहीं है, तो उनकी सम्पदा, उनकी प्रजा उस महानता में गमन नहीं कर सकती है, जिसमें उसे करना चाहिये।

महर्षि याज्ञवल्क्य का याग-दर्शन

तो विचार आता रहता है, मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट नहीं करने आया हूँ, केवल परिचय देना है याग के सम्बन्ध में

बेटा! हमारे यहाँ एक समय याज्ञवल्क्य मुनि महाराज और ब्रह्मचारी उनके अङ्ग-सङ्ग विद्यमान है। क्योंकि हमारे यहाँ परम्परागतों से ही, **भगवान मनु ने एक नियमावली धारण करायी थी कि प्रत्येक विद्यालय में प्रातःकालीन याग होना चाहिये, क्योंकि देव-पूजा, हमारे यहाँ परम्परागतों से बड़ी विशिष्ठ मानी गयी है, क्योंकि हमारे यहाँ, देखो महर्षि वशिष्ट इत्यादियों के विद्यालयों में भी प्रायः याग होता रहा, इसमें मानव-धर्म और मानवीयता और मानव-दर्शन उनके समीप आता रहा।** जैसे, हमारे यहाँ, गोमेध-याग का वर्णन आता है, गोमेध याग का वर्णन, बेटा! आचार्यकुलों में होता रहा है, आचार्यकुलों में, देखो 'मेधां ब्रहे व्रतं दिव्यां' आचार्यजन ब्रह्मचारियों को अपने सङ्ग विद्यमान कराते रहते और उन्हें, मानो देखो, मेध प्रधान करते रहते 'मेधाम' देखो 'गौ मेधां ब्रह्मः' वो अन्धकार से उसे प्रकाश में लाते रहते और प्रकाश में प्रत्येक इन्द्रियों का जो विषय है, बहुत पुरातन काल से ही हम वर्णन करते रहे हैं, तो गोमेध-याग का अभिप्राय यही है कि उसे 'अन्तंब्रव्हे' प्रकाश में लाना और इन्द्रियों के विषयों को आचार्य उनका शोधन कर देता है जब आचार्य उनकी प्रत्येक इन्द्रिय का शोधन कर देता है वह **व्याकरण की पद्धति में ये माना गया है कि व्याकरण कहते ही उसे हैं जहाँ विजातीय पदार्थ को दूरी कर दिया जाता है, सजातीय पदार्थ को सजातीय शब्द या पदार्थ को वहीं नृत्य किया जाये, वही व्याकरण कहलाया जाता है।** तो इसीलिये हमारे यहाँ आचार्यजनों के कुलों में प्रायः देखो आचार्यजन ब्रह्मचारी को और उनकी जो जिज्ञासा बनती उसका समाधान करना, यह प्राय हमारे यहाँ एक नृत्य और परम्परागतों से पद्धति मानी गयी है।

जो महर्षि कालेत्व ऋषि महाराज ने, जो मनु वंश में देखो प्रारम्भ के मनु ने जब राष्ट्र का निर्माण हुआ उन्होंने उनके पुरोहित कहलाते थे और बड़े महान् तपस्वी और आचार्य थे, जब राष्ट्र उनकी वार्ता स्वीकार नहीं करता था, उस के पश्चात कालेत्व ऋषि महाराजा राजा

को यह शिक्षा देते कि चलो तपस्या करने चलें वो तपश्चर होते रहते और वह तपस्या मानो प्राण और मनकी साधना करते रहते थे। मन, प्राण और विचार, ये तीन मनके एक ही सूत्र के कहलाते हैं, तो इनके ऊपर उनका अध्ययन होता रहता गायमाणि छन्दों में ले जाते, कहीं जल का आहार करते तो कहीं अन्न का आहार करते, कहीं वायु का सेवन करते तो मानो अपने अन्तरात्मा में एक पवित्रता की तपस्या धारा में परिणत हो करके मन-आत्मा जब पवित्र हो जाते तो, बेटा! देखो, प्रजा उसी विचारों में पुनः से रत्त हो जाती। आचार्यजन भी इस प्रकार के क्रिया कलाप करते रहे। आचार्य जनों के हृदयों में जब विकृतियाँ आ जाती हैं, तो जन समूह मानो देखो विकृति में परिणत हो जाता है। ब्रह्मचारी, आचार्यजनों के अङ्ग-सङ्ग रहने वाले उनमें विकृतियाँ जभी आती हैं, जब आचार्य के मन में विकृतियाँ आ जाती हैं और इसीलिये आचार्यजन और ब्रह्मचारी का परम्परागतों से, सृष्टि के प्रारम्भ से परस्पर बड़ा समन्वय रहा है परम्परागतों से सृष्टि के प्रारम्भ से क्योंकि ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा से ले करके यह प्रणाली इसी प्रकार गतिवान् होती रही है।

याग-विधान

तो आज मैं इस सम्बन्ध में नहीं केवल विचार यह देने के लिये कि हमारे यहाँ ये पद्धतियाँ परम्परागतों से तो देखो याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के यहाँ एक समय प्रातःकालीन् ब्रह्मचारी अङ्ग-सङ्ग विद्यमान हो करके प्रातःकालीन् याग, अग्निहोत्र करने के पश्चात मुनिवरो! ब्रह्मचारियों ने अपनी जिज्ञासा प्रकट की। एक ब्रह्मचारी उपस्थित हुआ और बह्मचारी ने कहा—प्रभु! हम याग कैसे करें? उन्होंने कहा—याग में साकल्य होना चाहिये, घृत होना चाहिये, दुग्ध होना चाहिये, याग में देखो यज्ञशाला का विधिवत निर्माण होना चाहिये। देखो, यज्ञशाला त्रिकोण से ले करके चौबीस कोणों तक की यज्ञशाला का मानो विश्वकर्मा

से निर्माण कराना चाहिये, उसमें याग करो उसमें सप्तजिह्वा वाली अग्नि मानो तुम्हारे 'पापाम् भूषण प्रब्हे' तुम्हारे में देखो तुम्हें **सजातीय पुनः से सजातीय कर देगी** और वही अग्नि, मानो देखो, तुम्हारे विजातीय जो अवगुण हैं, उन्हें वह अपने में ग्रहण करने लगेगी तो इसीलिये सप्तजिह्वा वाली जो अग्नि है, उस अग्नि का तुम्हारे हृदय की अग्नि से समन्वय होना चाहिये। जैसे, यजमान अपने हृदय की अग्नि और देखो यज्ञशाला की अग्नि का, दोनों का समन्वय करता है। यदि यजमान का मन यज्ञशाला पर विद्यमान हो करके विकृत होता है, अथवा द्वितीय स्थलियों में मन भ्रमण करता रहता है, मन में जब तक वह अग्नि की तरङ्गों, को तरङ्गित करते हुए देखो मन स्थिर नहीं हो पाता तो उसके मन, हृदय की जो अग्नि है, उसमें शुद्धिकरण नहीं आ पाता।

तो विचार आता रहता है, मैं इस सम्बन्ध में कोई विशेषता तो वर्णन नहीं करूँगा, विचार केवल यह कि देखो उस समय याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने जब यह वर्णन कराया देखो मन-कर्म-वचन एक ही सूत्र में रहने चाहिये और वह सूत्र है वेद रूपी जो ज्ञान का सूत्र है अग्नि का, जो अग्नि प्रदीप्त हो रही है उसका जो सूत्र है, वह सप्त-जिह्वा वाली अग्नि कहलाती है, उस अग्नि में अग्नि का अपना समन्वय करना है, तो वह मानो पवित्रत्त्व मे गमन करती है।

असुविधा में याग-विधान

उस समय ब्रह्मचारी ने कहा—प्रभु! यह तो हमने स्वीकार कर लिया परन्तु यदि गो—घृत, साकल्य और देखो निर्माण कर्त्ता भी हमारे समीप, या निर्माण हम नहीं कर पाते तो उसके पश्चात हम याग कैसे करें ? उन्होंने कहा—तुम देखो यज्ञशाला का निर्माण तो कर ही सकते हो तो उसमें तुम मानो साकल्य यदि उपलब्ध नहीं है सामग्री और तुम्हारा घृत भी उपलब्ध नहीं है गो-घृत, और दुग्ध भी उपलब्ध नहीं है तो तुम उसके पश्चात् मानो देखो वह अग्नि में स्वाहा, 'प्राणाय स्वाहा'

अपने मानो देखो पञ्च प्राणों और दस प्राणों की 'अमृताम्' तुम साकल्य से आहुति देना मानो उसमे अर्पित करो और अर्पित करने के पश्चात तुम्हारा वो याग सम्पन्न होगा। उन्होंने कहा—प्रभु ! यदि देखो समिधा भी न हो, कहीं समिधा भी उपलब्ध नहीं हो तो भगवन् ! याग कैसे करें ? उन्होंने कहा—तुम जल को अपने 'प्रोक्षणं ब्रह्मे' तुम देखो जल को पात्रों में ले करके तुम याग करो, मानो देखो, तुम 'सध्यां ब्रह्मा' जैसे संध्या में तर्पण होता है, मार्जन याग में होता है, तर्पण और मार्जन के द्वारा तुम मानो जल की आहुति प्रदान कर सकते हो। उन्होंने कहा—प्रभु ! कहीं मानो जल भी उपलब्ध न हो, तो उस समय हम याग कैसे करें ? उन्होंने कहा—जल भी उपलब्ध न हो, तो तुम शुद्ध कहीं देखो दूरी देखो पृथ्वी के परमाणुओं को पृथ्वी की रज को ले करके तो मानो उसमें स्वाहा का उच्चारण कर सकते हैं। वह गुरूत्त्व है, परन्तु उसमें पञ्चीकरण है उसके द्वारा तुम याग कर सकते हो। उन्होंने कहा—प्रभु ! कहीं ऐसा भी उपलब्ध न हो ? उन्होंने कहा—ऐसा न हो तो तुम मानो देखो मन—कर्म—वचन को एकाग्र करते हुए तुम मानो जिन मन्त्रों का उद्गीत गाते हो, वेद के उन मन्त्रों का उद्गीत गा सकते हो और गाने से मानो देखो उन मन्त्रों की पुनरुक्ति करते हुए तुम अपने याग को सम्पन्न करो मेरे प्यारे ! ब्रह्मचारी मौन हो गये।

आध्यात्मिक याग-विधान

ब्रह्मचारी ने कहा—क्या प्रभु ! हमसे आन्तरिक जगत् का और बाह्य जगत् का दोनों का क्या समन्वय रहता है ? उन्होंने कहा—बाह्य जगत् और आन्तरिक जगत् मानो जो आन्तरिक जगत में क्रिया-कलाप हो रहा है, वही तुम्हारे देखो बाह्य जगत् में हो रहा है और बाह्य जगत् और आन्तरिक जगत् दोनों का समन्वय करना ही वो हृदय रूपी हृदय से जिन इन्द्रियों का समन्वय रहता है, उन साकल्यों को एकत्रित करके तुम हृदय रूपी यज्ञशाला में याग कर सकते हो।

याग विविधा

मेरे प्यारे ! देखो, उन्होने याग की बड़ी विस्तृत विवेचना की और उन्होंने कहा—याग अपने में बड़ा पवित्रतम् कहलाता है, अपने में ही मानो देखो अपने में अपनेपन का याग करते रहो। जैसे, देखो संसार में जितना भी सुक्रियाकलाप है, जितना भी मानो देखो 'विद्यादानाम् भूत प्रबृहः नन्दनम्' मानो जितना भी विद्या का दान प्रदान किया जाता है वह भी याग है। कोई ब्रह्म ज्ञान दे रहा है, वह भी याग है, मानो किसी को सुमार्ग पर गमन करा रहा है वो भी याग है। माता अपने गर्भस्थल में याग कर रही 'पुत्र-याग कर रही है, वो भी याग है। राजा अपने राष्ट्र में मानो अध्वर्यु बन करके प्रजा और राजा दोनों को सुमार्ग और राजा स्वयं अपने में शुद्ध क्रियाकलाप करने वाला हो, वह भी याग हो रहा है। यों तो संसार में आत्मा का जितना भी मानो उत्कृष्ट होना है, वो सर्वत्र याग कहलाता है। इसीलिये इस संसार को परमपिता परमात्मा के जगत को आचार्यों ने मेरे पुत्रो ! एक प्रकार की यज्ञशाला के रूप में वर्णित किया है कि यह संसार एक प्रकार की यज्ञशाला है और यज्ञशाला में याग हो रहा है। इसीलिये याग अपने में बड़ा अद्वितीय क्रियाकलाप है।

गार्हपथ्याग्नि पूजन

मेरे पुत्रो ! ब्रह्मचारियों ने कहा—प्रभु ! आप को धन्य हैं ! आप हमारी जिज्ञासा को शान्त करने वाले आचार्य वही होता है, जो हमारी जिज्ञासाओं को शान्त करने वाला हो। क्योंकि संसार में जितनी भी पठन-पाठन की पद्धति है, वो गार्हपथ्य नाम की अग्नि का पूजन कहलाता है, वो अग्नि का देखो गार्हपथ्य नाम की अग्नि का याग कर रहा है। ब्रह्मचारी एकान्त स्थलियों में विद्यमान हैं अध्ययन कर रहा है और देखो मन-कर्म-वचन से 'मन-कर्म-वचनम् बहे विचारा सुतम्' वह

विचारों से याग करता पठन-पाठन क्रियाओं में लगा हुआ है, मन-मस्तिष्क उसका वहीं रहता है, तो वो पवित्र याग कर रहा है/हे गार्हपथ्य नाम की अग्नि का पूजन करने वाले ब्रह्मचारी ! तू जब याग करता है, अपने में देखो नाना प्रकार की अर्थिकता को, नाना प्रकार के तू सारे ज्ञान-विज्ञान को और इस भौतिक-विज्ञान को, मानो देखो, गणित विद्या का जब तू अध्ययन करता है तो तू गार्हपथ्य नाम की अग्नि का पूजन कर रहा है। वह गार्हपथ्य अग्नि कहलाती है, जब प्रातः काल में तू अपने हृदय रूपी अग्नि का अग्नि को प्रदीप्त करता हुआ बाह्य और वह शब्दों की अग्नि के ऊपर तेरा अधिपथ्य हो जाता है तो तू महानता में परिणत हो जाता है। तो इस प्रकार मुनिवरो ! देखो, ब्रह्मचारियों ने अपने में अपनेपन को ही दृष्टिपात् कराया। आचार्य के चरणों में विद्यमान हो करके मानो अपने में ही अपनेपन और आचार्यत्त्व को धारण करता हुआ गोमेध याग कर रहा है।

गोमेध याग

गोमेध याग के बहुत से भिन्न-भिन्न प्रकार के पर्यायवाची हैं, देखो ब्रह्मचारी विद्यालय में गोमेध याग कर रहा है, एक मानो देखो किसी नदियों के तट पर विद्यमान हो करके, एक योगेश्वर जब अपनी इन्द्रियों के ऊपर संयम करता है, और इन्द्रियों के विषयों को साकल्य बना रहा है और साकल्य बना करके अपने में एकोकीकरण कर रहा है, वह मानो देखो वह भी गोमेध याग कर रहा है। मेरे पुत्रो ! देखो एक उर्ध्वा में गमन कर रहा है, मानो देखो इन्द्रियों के विषयों का साकल्य बनाता है, हृदय का हृदय से मानो देखो श्रद्धा में ही परिणत हो जाता है, और श्रद्धा में ही परिणत हो करके देखो एक सूत्र याग कर रहा है, उसी हृदय को एकाग्र करता हुआ, मानो द्वितीय विराजमान हो करके वह श्रद्धा व दक्षिणा में परिणत हो करके मानो त्यागपूर्वक परमात्मा के हृदय से मिलान कर रहा है। वह हृदय रूप जो यज्ञशाला में मानो

परम पिता परमात्मा के हृदय से समन्वय हो रहा है वह यौगिक याज्ञ कर रहा है, वह भी मानो देखो एक याग कहलाता है। इसी प्रकार वह गोमेध कहलाता है क्योंकि गो के बहुत से पर्यायवाची शब्द हैं। तो मुनिवरो ! देखो एक राजा के राष्ट्र में राजा अपने राष्ट्र में गो का हनन नहीं होने दे रहा है, वह पशु है और पशु की रक्षा हो रही है उसके राजा के राष्ट्र में दुग्ध होना चाहिये तो वह मानो देखो वह भी गोमेध याग है। पशु वृत्तियों का याग कहलाता है।

तो मैं आज बेटा ! तुम्हें याग के सम्बन्ध में विशेषता में नहीं ले जा रहा हूँ ये तो प्रर्यायवाची शब्द हैं इनकी तो विवेचना प्रायः होती रहती है। तो विचार आता रहता है कि संसार में जितना भी सुक्रियाकलाप है, वह मानो देखो सर्वत्र, याग कहलाता है। तो इसीलिये मानव को जब देव-याग में परिणत होता है जहाँ यजमान विराजमान होता है, वह जो शुद्धिकरण कर रहा है, 'उषणं ब्रह्वे' वह मानो देखो वो याग एक अग्नावृत कहलाता है। तो विचार आता रहता है एक यौगिक याग कर रहा है, वह अपने हृदय में ही, हृदय का हृदय में ही याग कर रहा है। पुत्रो ! वह और भी महान पवित्रतम् कहलाता है।

तो याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा है कि ब्रह्माण्ड को पिण्ड में और पिण्ड को ब्रह्माण्ड में, दोनों का परस्पर मानो समन्वय होना चाहिये और, मुनिवरो ! देखो, वह समष्टि और व्यष्टि देखो, व्यष्टि को समष्टि में और समष्टि के व्यष्टि के स्वरूप को जो जानता है, मेरे पुत्रो ! देखो वह महान धर्म और मानवीयता में सदैव परिणित रहता है। तो आओ, मुनिवरो ! देखो, मैं इस सम्बन्ध में विशेष तुम्हें विवेचना देने नहीं आया हूँ। अब मेरे प्यारे महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगे—

महर्षि महानन्द जी के विचार

''ॐ यशश्चाहं यमारथं दिव्य वृत्ता दधिमहाम्''

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ! अथवा मेरे भद्र ऋषि मण्डल ! भद्र समाज !

अभी-अभी, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव विद्यालय की और याग की बड़ी विस्तृत विवेचना कर रहे थे। क्योंकि प्रायः ये गागर में सागर की कल्पना प्रायः करते रहते है। क्योंकि प्रत्येक शब्द अपने में याग है, प्रत्येक क्रिया कलाप अपने में याग है, पूज्यपाद गुरुदेव का यही कथन रहा है। क्योंकि इन्होंने नाना प्रकार के यागों का चयन और कर्मकाण्ड के ऊपर बड़ा अध्ययन किया। वेद के मन्त्र और कर्मकाण्ड इनका बड़ा विशिष्ठ बन करके रहा है। आज मैं विशेषता में नहीं जाऊँगा।

पूज्यपाद गुरुदेव ! यह संसार परम्परागतों से बड़ा एक संस्कारो का समूह चला आ रहा है, क्योंकि इस संसार में प्रत्येक जो प्राणी मात्र है, इसमें एक-दूसरे के संस्कारों से मानव कटिबद्ध हो रहा है और जहाँ जिसके संस्कारों की अन्तिम कड़ी आती है, वहीं वह सम्पन्नता को प्राप्त होता रहा है, जब मानव के हृदय से हृदय का मिलान होता रहता है, मानव के सस्कारों का सस्कारों से मिलन होता रहता है, वहीं उसकी प्रतिभा समाप्त हो जाती है। मैं विशेषता में नहीं जा रहा हूँ, बहुत समय को दृष्टिपात् करने के पश्चात् जन्म-जन्मातरों के संस्कारों की कड़ी जहां वो मानो सम्पन्न होती है, वहीं होती रही है, विचारों का एक समूह होता रहा है, इसीलिये आज जहाँ हमारी यह वाणी जा रही है वहाँ एक याग सम्पन्न हुआ है और वो सम्पन्न ऐसी दृष्टि में हुआ है, मेरी में जहाँ मिलन होना विछड़न होने से मानो उसी कड़ी में उसका सम्पन्न होना है यह प्रायः मानव के संस्कारों का एक समूह है। क्योंकि आचार्यो ने दार्शनिकों ने इस संसार को जिस भी कल्पना में और जिस आभा में इसको मापने का प्रयास किया है, वहीं वह देखो सम्पन्नता को प्राप्त होता रहा है।

इस संसार को देखो यदि कल्पवृक्ष कहा जाये तो वहाँ पूर्णत्त्व है यदि इस संसार को विचारशाला कहा जाये तो वह भी सम्पन्न है। यदि इस संसार को यह कहा जाये यह देने-लेने की व्यापारशाला है,

तो वहाँ भी यह मानो सम्पन्नता को प्राप्त होती रही है। यह विचारधारा यदि हम स्वीकार कर लें कि संस्कारों का समूह है, तो वहाँ भी यह पूर्णता को प्राप्त होता रहा है और यदि इस संसार को, पूज्यपाद तो जानते ही हैं हम यह स्वीकार कर लें कि यह नृत्यशाला है, यहाँ मानव देखो मरण और जीवन के लिये आता है, और उसके ऊपर विवेचना की जाये तो वह भी पूर्णता को प्राप्त हो जाती है। इसीलिये मैं आज, देखो मैं अपने यजमान के साथ मेरा अन्तरात्मा तो रहता ही है, परन्तु अन्तरात्मा यहाँ ब्रह्मे, क्या देखो—हे यजमान ! मेरा अन्तरात्मा तो यही कहता है, कि तेरे गृह में सदैव द्रव्य का सदुपयोग होता रहे और तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। तेरे जीवन में महानता आती रहे और विशालता आती रहे ! परन्तु देखो एक गृह में एक मानव का मिलन है, तो उसी का वहीं विछड़न हो जाता है तो यह बड़ी विचित्रता की धारा है। क्योंकि मानव है। क्या, मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से बिछड़ गया पुनः मिलन हो गया, मानो बिछड़ करके मिलन होना और मिलन हो करके विछड़न होना, इसी का नाम यह संसार है। यदि मैं इसके ऊपर विवेचना करने लगूँगा तो इसके अन्तिम छोर तक चला जाऊँगा, परमात्मा की धारा में मैं प्रवेश कर जाऊँगा। तो इसीलिये प्रत्येक मानव को यह विचारना है, कि याग बड़े सम्पन्नता के रूप में मानो देखो 'पराब्रह्मे' वायुमण्डल की प्रतिभा अपने में प्रतिभा बन करके रहती है।

तो विचार आता रहता है, मैं जन्म-जन्मातरों की कड़ियों में तो नहीं जाना चाहूँगा कौन, किसका क्या, किससे सम्बन्ध है ? यह विचारधारा तो मैं नहीं प्रकट करने आया हूँ, केवल इतना ही है कि देखो मिलन-बिछड़न है, इसी का नाम दुःखद है। आत्मा विनाश को प्राप्त नहीं होता, न शरीर ही विनाश को प्राप्त होता है, केवल उसका रूपान्तर होता है। दर्शनकारों की एक ही बड़ी विचित्रता रही है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव, जब गम्भीर दर्शन में प्रवेश कर जाते हैं, तो उसमें

केवल एक ही वाक्य आता है न हीं शरीर का विनाश होता है, न आत्मा का विनाश होता है। परन्तु देखो एक मुझे दाहः रही है कि मैं जिस आत्मा के सम्बन्ध में उद्गीत अपने विचार दे रहा हूँ, वो दाह रूप में आत्मा अपने शरीर को त्याग करके चला गया है, इसका मुझे आश्चर्यत्त्व मानो इसलिये नहीं होता क्योंकि मानव का अन्तर्हृदय दाह में चला जाता है, कही दाह संस्कारों का पुनः से समूह बनता रहता है। तो इसीलिये मैं इस दर्शन में नहीं जाऊँगा। केवल विचार-विनिमय मेरा यही रहा है कि में 'अमृतम ब्रह्मे' ये तो सम्बन्ध हैं, कहीं कहीं मानो, धर्म में कहीं कहीं मानो विशुद्ध क्रियाकलाप में एक मानो कहीं हमे उसे बाध्य कर रहा है करने के लिये द्वितीय प्राणी उसमें देखो बाध्यता में कहता है "अमृतं मान ब्रह्वे" मानो देखो इसमें, मुझे कहीं देखो इस प्रकार का कष्ट दिया तो मैं भी इसी प्रकार का कष्ट मानो उसके अन्तरात्मा की एक वृत्तियाँ विद्यमान होती हैं।

तो विचार आता रहता है, मैं इस सम्बन्ध में कोई विचार नहीं देना चाहता हूँ, विचार केवल यह कि—हे यजमान! मेरा अन्तरात्मा तो तेरे सदैव साथ रहता है, मेरी प्रेरणा, मानो देखो द्रव्य का सदैव सदुपयोग होना चाहिये। गृह में जितना भी, जिस गृह में सदुपयोग होता है, उतना ही द्रव्य उसकी ममता बन करके, उसे अपने कण्ठ से आलिङ्गन कर लेती है; जितना द्रव्य का दुरुपयोग होता है, उतना ही वह द्रव्य मानो देखो एक मानव मात्र वो देखो विदुषी न बन करके वह ममता न बन करके वह अममता बन करके उसे अपने हृदय से दूरी कर देती है। और एक समय वह माया से विहीन हो जाता है, वह उस ममता से विहीन हो जाता है। जो मानव देखो द्रव्य का सदुपयोग नहीं करता उसके हृदय में विडम्बना बन जाती है, एक दाह बन जाती है तो वह उसके हृदय में एक दाह बन जाती है, तो वो दाह नहीं रहनी चाहिये।

इसलिये देखो आज मैं विशेष विचार देना नहीं चाहता विचार केवल यह कि आज का विचार यह है मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अपनी गागर में सागर की कल्पना तो करते ही रहते हैं परन्तु मैं तो केवल इतना कि हे यजमान ! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे ! जीवन महानता में देखो अग्रणीय होता रहे ! ह्रदय में, देखो जब तुम ऊँचे क्रियाकलाप अपने गृह में करते रहोगे तो आगे से तुम्हारी प्रजा भी ऊँचे क्रियाकलापों को, मानो उसमें तत्पर रहेगी, ऐसी मेरी कामना रही है।

तो विचार क्या ? पूज्यवाद गुरुदेव का तो बड़ा अनुभव है, इन्होंने बहुत अध्ययन किया है तपस्याऐं मानों की है, मानों तपस्या के प्रति भोग में अपने में बहुत दूरी ले जाते हैं, हमें विचार देने लगते हैं तो बहुत दूरी चले जाते है, दर्शनों में चले जाते है, तो दर्शनों की, याग में प्रवेश हो जाते है तो याग की चर्चा करते रहते हैं, तो इस सम्बन्ध में, तो मैं विचार देना नहीं चाहता हूँ। केवल यह कि मैं परमपिता परमात्मा से सदैव प्रार्थना करता रहता हूँ—हे भगवन् ! 'अम्रतां ब्रह्मणे' हे यजमान ! तू सदैव महानता में गमन करता रहे। और, देखो जितने भी दुःखद हृदय में प्रवाह, देखो उसकी दाह तेरे हृदय में नहीं रहनी चाहिये मानो ये तो जन्म-जन्मान्तरों के संस्कारों की कड़ी है ये बनी रहेगी। मानों जन्म-जन्मान्तरों के देखो, जब तक हृदयों के अन्तःकरण में जब तक संस्कार विद्यमान होते हैं, जब तक यह जगत् हैं और संस्कारों से जहाँ विहीन हुआ, वहीं देखो परमात्मा से उसका मिलन हो जाता है।

तो यह आज का विचार, मैं विशेषता में वर्णन नहीं करने जा रहा हूँ, केवल यह देखो वाम मार्ग का काल, है। यहाँ सुरा-सुन्दरी में मानव लगा हुआ है और देखो इसीलिये यजमान ऐसे काल में देखो, जो अपने द्रव्य का सदुपयोग जो करता है वो महान कृतियों में रत हो रहा है। यह आज का विचार हमारा सम्पन्न होने जा रहा है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने देखो गोमेध याग के सम्बन्ध में, ब्रह्मचारियों के

सम्बन्ध में बड़े सुन्दर उद्‌गीत हमें बाल्य काल में दिया करते थे, मानो उसी प्रकार उनके उद्‌गीत प्रारम्भ होते रहते है। अब मैं अपने पूज्यपाद गुरु देव से आज्ञा पाऊँगा।

पूज्यपाद द्वारा उपसंहार

मेरे प्यारे ऋषिवर! अभी-अभी मेरे प्यारे महानन्द जी ने ये जो अपना विचार दिया है, वह बड़ा एक पृथ्वी के तुल्य है, जैसे पृथ्वी अण्डाकार है, उसी प्रकार इन्होंने अपने विचारों को अण्डाकार के रूप में परिणत किया है, हम उनके विचारों को जान नहीं पाये हैं। परन्तु कोई वाक्य नहीं, जो संस्कारों के ऊपर अपना ये विचार दे रहे थे इनके विचार तो दर्शनों की प्रतिभा में बड़े विचित्र हैं, कोई वाक्य नहीं, आज का यह विचार क्या कह रहा है कि, हम परमपिता परमात्मा की महती और अनन्तता के ऊपर सदैव विचार-विनिमय करते हुए और ये जो परमात्मा का अनूठा जगत् है, यह अनन्तमयी है और वह यज्ञोमयी स्वरूप है, क्योंकि परमपिता परमात्मा सदैव याग में परिणत रहता है। यह परम्पिता परमात्मा ने ब्रह्माण्ड रूपी यज्ञशाला का निर्माण किया है और इस 'निर्माणं ब्रहे' इस संसार को हमें जानना है हमारे आने का उद्देश्य केवल यही है तपस्या में तपश्चर रह करके एक-एक वाक्य के ऊपर हमें अपने में अनुभव उसका अनुभव करते हुए सागर से पार हो जायें। यह आज का विचार, अब सम्पन्न होने जा रहा है। शेष चर्चाएँ, कल प्रकट करेंगे। अब वेदों का पठन-पाठन–

ओ३म् देवारथं आभ्यां ऋषिः वरुणं वृत्ताः आपारेवं गता
आहंवाचन्नमं ब्रह्मः वसु गायन्त्वाः।
आहं सर्वं गत प्राणः वायुरेवं भद्राः
विशश्चानं गतं प्रहं मनुः।।

हापुड, उ० प्र०
३-१२-८९

यागों का चर न

जीते रहो,

देखो मुनिवरो !

आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया हमारे यहाँ ये पाठ्यक्रम परम्परागतों से विचित्रतम माना गया है। क्योंकि प्रत्येक वेद मन्त्र में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। और जितना भी यह ब्रह्माण्ड है, जितना ये जगत है उस सर्वत्रतां में ब्रह्ममयी स्वरूप माना गया है। हमारे वैदिक साहित्य वालों ने उस परमपिता परमात्मा को विज्ञानमयी स्वरूप माना है। जहाँ विज्ञानमयी स्वरूप माना गया है वहाँ यज्ञोमयी स्वरूप का भी वर्णन आता रहता है क्योंकि वह परमपिता परमात्मा यज्ञोमयी स्वरूप माना गया है जितना भी संसार रूपी याग हो रहा है मानों वह परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन है अथवा उसकी प्रतिभा में एक याग होता हुआ दृष्टिपात आ रहा है। उसी ब्रह्माण्ड में नाना प्रकार की वनस्पति है वह नाना रूपों से याग कर रही हैं। मानो अपने से सुगन्धि देती रहती हैं और दुर्गन्धियों को अपने में सिञ्चन करती रहती हैं, अपने में धारण करती रहती हैं। परन्तु वह महान मेरे प्रभु का कितना यज्ञोमयी अथवा विज्ञानमयी स्वरूप का वर्णन होता रहता है वे परमपिता परमात्मा सर्वत्र विज्ञान के मूल में हैं क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान के

काल तक कोई वैज्ञानिक ऐसा नहीं हुआ जो परमपिता परमात्मा के विज्ञान को सीमाबद्ध कर सके। क्योंकि वे परमपिता परमात्मा सीमा से रहित हैं वे सीमा में आने वाले नहीं हैं। वैज्ञानिक एक अणु और परमाणु का निर्माण नहीं कर सकते, उसको गति प्रदान नहीं कर सकते। वे परमपिता परमात्मा उस सर्वत्रता को धारण किये रहते हैं। वह उसका आयतन माना गया है। परन्तु जो जिसका आयतन माना गया है उसका विज्ञान कितना नितान्त और महानता में गति करता रहता है।

आओ मेरे पुत्रों आज का हमारा वेद मन्त्र नाना प्रकार के यागों का चयन करता रहा है। क्या हम परमपिता परमात्मा को मूलक स्वीकार करते हैं? मानो उसे पञ्च महाभूतिकरण माना जाता है वह इस पञ्चमहा भौतिकता को अपने में धारण कर रहा है अथवा यागों का चयन हो रहा है। इस याग में मानव परिणत हो जाता है और उसमें रत्त हो जाता है जो यज्ञोमयी स्वरूप माना गया है। मानो वह जो परमपिता परमात्मा विष्णु है जो पालन कर्ता के रूप में हमें दृष्टिपात होता रहता है मानो वह विष्णु तत्त्व में रत्त रहने वाला तो वह विष्णु बत कहलाता है।

तो विचार विनमय क्या? बेटा! तुम्हें विशेष विवेचना में ले जाना नहीं चाहता, आज बेटा! उसी क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहाँ ऋषिमुनि अपनी आभा में अथवा अपने आसनों पर विद्यमान हो करके और अपने में मुद्रित हो जाते थे मानो अपनी सन्लग्नता से उस महान प्रभु का चिन्तन करते हुए और उसके यज्ञमयी स्वरूप को अपने में धारण करना अथवा उसको जानना एक मानवीयत्व व दार्शनिकत्व माना गया है तो मेरे प्यारे देखों नाना ऋषिवर याग के प्रसङ्ग में अपने को ले जाते थे।

महर्षि कागभुषुण्ड जी का नामोकरण

जैसा बेटा! इससे पूर्व काल में हमने तुम्हें ये वर्णन कराया कि

महर्षि कागभुषुण्ड जी और महर्षि लोमश जी दोनों की विवेचना आती रहती है। मेरे प्यारे महानन्द जी ने मुझे एक समय यह प्रगट कराया था कि ये जो आधुनिक जगत है, वर्तमान का जो काल है, वे कागभुषुण्ड जी के सम्बन्ध में यह निर्णय लेते हैं कि वो कागा पक्षी है मानो वो कागभुषुण्ड को ऋषि न कह करके ऐसा कहते हैं कि वो कागभुषुण्ड जी जब मानव की योनि में थे तब उन्होंने महर्षि लोमश मुनि का अपमान किया और उन्होंने उन्हें श्राप दे करके कागा की योनि में परिणत कर दिया परन्तु वो उन्हीं के चरणों में रहे और उन्हीं की वंदना करते रहे ऐसा मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी ने वर्णन कराया परन्तु यह वाक्य अशुद्ध हैं क्योंकि कागा पक्षियों में सबसे महान चञ्चल होता है और चञ्चल होने के नाते उसे कागा के रूप में वर्णित किया जाता है। वाणी में उसकी में कठोरपन होता है। परन्तु कागभुषुण्ड जी अपने में मानों ज्ञान का सदैव भंडार और ज्ञान की प्रतिभा में रत्त रहते थे परन्तु ज्ञान में वो चञ्चल थे और चञ्चल होने के नाते बाल्यकाल में वे जब अध्ययन करते रहते थे तो माता कहती थी कि बाल्य तुम्हारी प्रवति तो ज्ञान के सम्बन्ध में कागा प्रवृत्ति कहलाती है। तो उसी समय माता ने जैसे कागों प्रवृत्ति वाला उच्चारण किया तो उसका **नाम कागभुषुण्ड जी प्रसिद्ध हो गया, उसको उच्चारण करने लगे।** प्रायः माता का ये 'नामोकरण' वह एक व्यापक रूप धारण कर गया।

महर्षि कागभुषुण्ड जी का बारह वर्षों का अनुष्ठान

उस समय कागभुषुण्ड जी ज्ञान के जब क्षेत्र में प्रवेश हुये तो उन्होंने एक समय बेटा ! बारह वर्ष का अनुष्ठान किया और बारह वर्षों तक उन्होंने वेद का अध्ययन किया। दर्शनों के गर्भ में मौन रहते थे। जब वे मौन रहते थे तो एक समय भ्रमण करते हुए महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज और माता अरून्धति ने यह विचारा कि कागभुषुण्ड जी

अनुष्ठान कर रहे हैं चलो उनके अनुष्ठान में हम भी सम्मिलित होना चाहते हैं। तो माता अरून्धति और वशिष्ट मुनि महाराज दोनों भ्रमण करते हुए वे कागभुषुण्ड जी के आश्रम में पहुंचे तो कागभुषुण्ड जी अनुष्ठान में परिणत थे, मौन रहते थे परन्तु वशिष्ठ मुनि महाराज व माता अरुन्धति जब पहुंचे तो उन्होंने उनका स्वागत किया मौन होकर।

मौन की महत्ता

तो ऋषि से माता अरुन्धति ने कहा, कि हे ऋषिवर ! तुम मौन क्यों रहते हो ? तो ऋषि ने लेखनीबद्ध करके कहा, कि मैं इसलिये मौन रहता हूँ क्योंकि रात्रि अपने में मौन रहती है और मानव को शक्ति प्रदान करती है। जब उन्होंने यह वाक्य कहा कि रात्रि मौन रहती है, तो पुनः उन्होंने यह प्रश्न किया, कि ऋषिवर ! तुम मौन क्यों रहते हो ? उन्होंने कहा लेखनीबद्ध करते हुए कि एकोकी जो होता है वह मौन रहता है। जैसे मानव शरीर में रचना के रचनानतारी नहीं होंगे तो एकोकी रचना नहीं होगी। और यदि रचना है तालूकी है दोनों का समन्वय होगा। तब भी मौन रहेगा। परन्तु मौन क्यों रहा जाता है ? तो इन्होंने कहा कि मौन रहने का अभिप्राय यह है, कि प्रत्येक वस्तु मौन है। परमाणु अपने में गति कर रहा है परन्तु वाक्यों में वह मौन रहता है। जब ऋषि ने यह वाक्य उन्हें उत्तर देते हुए कहा तो माता अरुन्धति ने कहा, कि सन्तुष्टि नहीं हुई हैं मुनिवर ! इन वाक्यों से सन्तुष्टि नहीं हुई है, क्योंकि प्रत्येक प्राण, प्रत्येक परमाणु, अपने में गतिशील हो रहा है वह अपनी भाषा में भासित हो रहा है परन्तु वह गति करता हुआ भी गतिवान बन करके अपनी भाषा में उद्धृत हो रहा है। तो कागभुषुण्ड जी ने कहा कि मेरे मानवीयत्त्व में भी जो गति हो रही है वह भी अपनी भाषा में कुछ न कुछ उद्धृत कर रही है। परन्तु मैं संसार के सम्बन्ध में मौन रहता हूँ आत्मा के सम्बन्ध में,

परमात्मा के सम्बन्ध में, मैं मौन नहीं रहता हूँ। कागभुषुण्ड जी ने जब यह कहा तो उस समय माता अरुन्धति ने कहा कि ऋषिवर अब हमारी सन्तुष्टि होना प्रारम्भ हुआ है क्योंकि प्रत्येक परमाणु और वायु गति करने वाला भी मौन नहीं रहता है परन्तु **अपने में मौन रहना केवल, संसार के नाना प्रकार के स्थूल रूपो में मानव को मौन रहना है। मेरे प्यारे जितना भी सूक्ष्मवाद है उसमें मानव मौन नहीं रहता है, उसमें मानव की मौन गति नहीं रह सकती।** तो इसलिये बेटा यह सिद्ध हो गया और अनुष्ठान में वे सम्मिलित हो गये।

कागभुषुण्ड जी का याग पर अनुष्ठान

तो मेरे प्यारे देखो कागभुषुण्ड जी १२ वर्षों तक क्या पान करते थे ? इनके एक ब्रह्मचारी थे उदगेत्वक कृति महाराज। उद्‌गेत्वक ब्रह्मचारी उनके यहाँ पाञ्चाङ्ग अग्नि में तपा कर उनको पान कराते थे। उनका जो आसन था वह एक सर्पकेतू औषध होती है उसका आसन बना करके उस पर वे विश्राम करते थे। उसी पर रहते थे। १२ वर्षों तक उन्होंने अनुष्ठान किया तो वे तप में परिणत होते रहे और याग के ऊपर अनुष्ठान कर रहे थे। अनुष्ठान, याग के ऊपर क्यों कर रहे थे ? क्योंकि इस संसार में जब उन्होंने वेद के अक्षरों को लिया, वेद के मन्तव्य को लेना प्रारम्भ किया, तो वेदों में याग का बड़ा वर्णन आया है। कही वाजपेयी–यागों का वर्णन है तो कहीं अग्निष्टोम–याग का वर्णन है कहीं राष्ट्रीय और नाना प्रकार के यागों का चयन वैदिक साहित्य में उन्हें प्राप्त हुआ। राष्ट्रीय विचारों में भी उन्हें याग की ही प्रतिभा में यह मानवीयत्त्व प्राप्त हुआ। तो मुनिवरो देखो, जब याग का वर्णन आया तो उसी के ऊपर अनुसन्धान करने लगे। कहीं कहीं तो वेद के साहित्य में यह कहा है, वेदमन्त्र में यह

कहा है, कि माता पिता जो सन्तान उत्पन्न करते हैं उनका नाम भी याग है वह भी स्वाह है, वह याग है, वह सिन्धु है, वह वृणीता है, मानो वो ही सुरीता कहलाता है। तो ऐसा वैदिक साहित्य में जब यह वर्णन किया तो कागभुषुण्ड जी का १२ वर्षों तक इसी प्रकार का अनुष्ठान चलता रहा और **१२ वर्षों तक केवल इसी विचार पर लेखनीबद्ध करते रहे कि यह याग क्या है ? और यह मोक्ष का एक मूलक कैसे बन सकता है ?** वह ऋषिवर १२ वर्षों तक अनुष्ठान करते रहे। परमात्मा का चिन्तन करते रहे। तो वह अपने में सफलता को प्राप्त हो गये। महात्मा वशिष्ठ मुनि महाराज और माता अरुन्धति ने वहाँ से गमन किया और कहा कि ये तो अनुष्ठानिक हैं। वृक्षों का पञ्चाङ्ग पान करते थे, नाना प्रकार के कन्दमूल को पान करके अपने जीवन का निर्वाह कर रहे थे, ब्रह्मवर्चोसि से मिलन करने के लिए इच्छुक बने हुए थे।

भ्रान्तियाँ फैलाने का अभिप्राय

मेरे पुत्रो ! इसीलिये मैंने पुत्र महानन्द जी से किसी काल में यह वर्णन किया कि जो इस प्रकार की गाथाएँ मानो वर्णित रहती हैं यह केवल वैदिक साहित्य को, अपने महान पूर्वजों को दूषित करने के लिये होती हैं। इसमें दूषितपन आता है। साहित्य समाप्त हो जाता है और वैदिकता का ह्रास हो जाता है। **वो देखो अनुष्ठानिक पुरुष हैं लोमश मुनि महाराज और कागभुषुण्ड जी। एक ही गुरु के विद्यालय में अध्ययन करते थे** इसलिये दोनों का अध्ययन करने का माध्यम एक रहता था। एक ही विचारधारा में परिणत रहते थे तो मानो देखो इसलिये मुनिवरो देखो यह चलन हो गया कि यह "दावप्रहेवृत्ताम" मानो प्रायः यह ऐसा नहीं है। वह अपसरात को जो अपशब्द है वह मानो सान्त्वना को प्राप्त हो जाता है। तो परिव्यय क्या ? मुनिवरो देखो महानन्द जी को मैंने कई काल में वर्णन कराया कि हे पुत्र! ऐसा नहीं है।

प्राचीन ऋषियों की साधना

इस प्रकार ''अस्कृतो ब्रह्मा:'' मेरे प्यारे देखो मैं वहीं जाना चाहता हूँ जहाँ हम कल अपने विषय को त्यागने पर तत्पर रहे। विचार विनिमय क्या ? मुनिवरो देखो; कागभुषुण्ड जी व महर्षि लोमश, सोमकेतु और विश्वश्रुवा सर्वत्र ऋषि मुनियों में गमन करते हुए, भारद्वाज आश्रमों में भ्रमण करते हुए मुनिवरो देखो अपने आश्रमों का उन्होंने गमन किया और भ्रमण करते हुए मुनिवरो देखो वे अपनी स्थलियों पर आ गये। मानो देखो विश्वश्रुवा अपनी स्थलि पर पहुँच गये और सोमकेतु मुनि महाराज उनके साथ-साथ चले गये। दोनों का विचार विनिमय होने लगा कि मुनिवरो, क्या करना है मेरे प्यारे देखो उन्होंने, सोमकेतु ने कहा साथ चलो हम अभी और परामर्श करेंगे। विचार विनिमय करेंगे कि हमें याग कर्म करने के लिये क्या-क्या क्रियाकलाप करना हैं। तो मेरे प्यारे उनके विचारों में अनुष्ठान, वैदिक अनुष्ठान में परिणत हो गये दोनों और मुनिवरों देखो विश्वश्रुवा ने १२ वर्षों तक वेद का अध्ययन किया और वेद का अध्ययन करके मानो देखो पान, सूक्ष्मपान करते थे, सूक्ष्म आहार करते थे। मेरे प्यारे चिन्तन विशेष करते थे। **परमात्मा की सृष्टि को निहारते रहते। निहारना ही हमारा कर्त्तव्य है। 'कोई भी मानव जो जिज्ञासु बनना चाहता है, परमात्मा के राष्ट्र में गमन करना चाहता है, तो परमात्मा की सृष्टि को निहारना होगा। एक एक परमाणुवाद को निहारना होगा।**

विश्वश्रुवा एवम् सोमकेतु ऋषि का सामूहिक यागानुष्ठान

तो मेरे प्यारे देखो वे अपने में रत्त हो गये तो विश्वश्रुवा और सोमकेतु मुनि महाराज दोनों ने, सम्मिलित होकर के, अनुष्ठान किया और अनुष्ठान करते-करते वे उस दशा में पहुँच गये कि **अपनी प्रवृत्तियों**

को अपने लघु मस्तिष्क में ले जाते। अपनी प्रवृत्तियों को जब लघुमस्तिष्क में ले गये, तो वे सूक्ष्मवाद में रमण कर गये। वे मानो जैसे गति परमाणुवाद की हो रही है, ऐसी अपनी सूक्षमतम रहस्यों की। सूक्ष्म स्वरूप बनाया और सूक्ष्मतम रहस्यों में गमन करके, वह परमाणुओं के क्षेत्र में चले गये। परमाणुओं का जो क्षेत्र था; जैसे **यजमान अपनी यज्ञशाला में स्वाहाः उच्चारण करताहै, वह स्वाहाः का आकार बन करके, अन्तरिक्ष में, परमाणुवाद में गति करता है और परमाणुओं में ऊर्जा प्रदान करता हुआ, उन्हें समाधिष्ट में, लघु मस्तिष्क में यह सब चयन होता हुआ, दृष्टिपात आने लगता है।** इसी सूक्ष्मतम रहस्यों में वे गमन कर गये। जब गमन कर गये तो सोमकेतु ने यह दृष्टिपात किया, कि **रथम् ब्रहो वाचाः रथम् भविते सम्भवः विज्ञ ब्रह्मः''** मानो देखो ये रथ की कल्पना करने लगे, कि ये रथ क्या है। यह इस रथ में विद्यमान हो करके मानो गमन करता है ऐसा वेद का मन्त्र कहता है। होता जन उसमें रमण करते हैं, उसमें गमन करते हैं। **वह रथ क्या है ? वह जो वाणी का रथ बनता है और वाणी के रथ में विद्यमान हो करके, शब्द के रथ में विद्यमान हो करके, प्रवृत्तियों का जो रथ बनता है; शब्द अग्नि की तरङ्गों पर विद्यमान हो करके, वह प्राण सूत्र में सूत्रित हो जाता है। वह प्राण सूत्र में सूत्रित हो रहा है। प्रत्येक मानव का शरीर, मानव की प्रवृत्ति, वाह्य जगत प्राण सूत्र में सूत्रित होता हुआ, प्रायः दृष्टिपात आता रहता है।**

मेरे प्यारे देखो आज मैं विशेष विवेचना में न जाता हुआ केवल यह उच्चारण कर रहा था कि दोनों ने अनुष्ठान किया। अनुष्ठान करते-करते बारह वर्ष समाप्त हो गये। १२ वर्ष के पश्चात् वे बाह्य रचना में रत्त हो गये। उन्होंने भिन्न–भिन्न प्रकार के साकल्यों को एकत्रित किया। ऐसा मुझे स्मरण है बेटा ! विशवश्रुवा ने, सोमकेतु ने, दोनों ने

भयङ्कर वनों में जाकर के साकल्य को एकत्रित करने लगे। समिधाओं को एकत्रित करने लगे। उन्होंने नाना प्रकार की समिधाओं को एकत्रित किया और एकत्रित करके मेरे पुत्रों ! उसमें याग का "चयनम् ब्रहे वृताम् देवाः" ऐसा वेद का ऋषि, वेद का वाक्य भी कहता है, कि जिस प्रकार का **क्रियाकलाप तुम करना चाहते हो, जिस प्रकार को तुम अपने में लाना चाहते हो; वही प्रकार का तुम्हें साकल्य एकत्रित करना होगा।** उन्होंने लगभग साकल्य एकत्रित कर लिया। एकत्रित करके एक यज्ञशाला का निर्माण किया। जैसा वेद का मन्त्र यज्ञशाला का प्रमाण देता है उसी प्रकार की यज्ञशाला का उन्होंने निर्माण किया। उन्होंने दैविक, आधिदैविक अधिभौतिक तीन प्रकार के साकल्यों का एक प्रकार बनाया और "सम्भूति ब्रह्मवाचो" ऋषि ने यज्ञशाला में "प्रदोअक्षः" **अग्नाधान करने से पूर्व उन्होंने एक पृथ्वी (सृष्टि) का क्रम बनाया। पृथ्वी (सृष्टि) का क्रम बनाया, मानो एक मेखला में जल का प्रोक्षण करना, जल की प्रतिभा में रत्त रहना।** जब याग प्रारम्भ हो गया तो ऋषि मुनियों में एक सूचक प्राप्त हुआ कि महर्षि विश्वश्रुवा, सोमकेतु महाराज भयङ्कर वनों में एक याग कर रहे हैं। चलो उनके याग में सम्मिलित होना है।

विश्वश्रुवा व सोमकेतु ऋषि के याग में महर्षि लोमश व कागभुषुण्ड जी का आगमन व सम्वाद

तो मुनिवरो देखो महर्षि लोमश, कागभुषुण्ड जी दोनों ने बेटा अपने आश्रम से गमन किया और गमन करते हुए यज्ञशाला में पहुँचे। यज्ञशाला में ऋषि जब पहुँचे तो याग हो रहा है **अग्नाधान प्रातःकाल में प्रारम्भ किया।** जब प्रारम्भ किया तो कागभुषुण्ड जी ने कहा कि हे ऋषिवर ! हे विश्वश्रुवा उद्दालक ! तुम याग क्यों कर रहे हो ? उन्होंने कहा प्रभु ! हम याग इसलिये कर रहे हैं। क्योंकि हम बाह्य जगत को

अपने अनुकूल बनाना चाहते हैं बाह्य जगत हमारा जब अनुकूल हो जाता है तो आन्तरिक जगत भी अनुकूल हो जाता है। और दोनों की अनुकूलता होने पर ही हमारा व्यापकवाद बनता है। **यदि बाह्य जगत हमारा संङ्कीर्ण रहता है आन्तरिक जगत में व्यापकवाद नहीं रह पाता। परन्तु दोनों को हम व्यापक बनाना चाहते हैं क्योंकि व्यापकवाद में धर्म रहता है, व्यापकवाद में याग रहता है और व्यापकवाद में ही मानव का दर्शन निहित रहता है।**

शाकल्य की महत्ता एवम् स्वरूप

तो मेरे पुत्रो ऋषि ने जब यह वाक्य कहा कि मानव दर्शन इतना ऊर्ध्वा में है तो मुनिवरो देखो कागभुषुण्ड जी ने पुनः प्रश्न किया कि महाराज ! तुम यह साकल्य क्यों अग्नि में हूत कर रहे हो ? उन्होंने कहा कि हे भगवन् ! जितना शाकल्य है वह सब अग्नि स्वरूप माना गया है, मानो अपने में अपनेपन को ही प्राप्त हो रहा है इसमें हमारा कोई दोषारोपण नहीं हैं। कागभुषुण्ड जी मौन हो गये। विचारने लगे कि यह वाक्य तो बड़ा ही विचित्र है। ये जितना भी साकल्य है यह सब अग्नि स्वरूप है क्या ऋषिवर ! तुम इसे अग्निस्वरूप कैसे स्वीकार करते हो ? उन्होंने कहा प्रभु ! इसलिये क्योंकि ये अग्नि के तत्त्वों का मानो एक नृत्य है और ये जल से सुगठित हो रहा है **जिसे हम आपो कहते हैं।** इस साकल्य में भी अग्नि विद्युत स्वरूप विद्यमान है, परन्तु वह सुगठित है। और ये जो पृथ्वी के परमाणु हैं, जो इनको स्थूल रूप में दर्शा रहे हैं, ये पृथ्वी के परमाणु भी अग्नि स्वरूप माने गये हैं। यदि अग्नि नहीं होगी, तो इसके परमाणुओं में गति नहीं आ सकती, उसमें स्थूल रूप भी नहीं आयेगा। इसीलिये ये सम्मिलित होकर के, ये सुगठित होकर के, एक सूत्र में पिरोये हुए होने के नाते प्राण स्वरूप बनकर के, और ये अग्नि भी प्राणस्वरूप है; परन्तु इतना ये सब साकल्य

प्राणशक्ति को उद्धृत करने वाला है इसीलिये अपने में अपने को प्राप्त हो रहा है। मेरे प्यारे देखो, ऋषि सन्तुष्ट हो गया।

समिधा की महत्ता एवम् स्वरूप

ऋषि ने कहा कि हे प्रभु ! वाक्य तो यथार्थ हैं परन्तु हम यह जानना और चाहते हैं कि तुम अग्न्याधान किससे कर रहे हो। उन्होंने कहा अग्न्याधान समिधा से कर रहे हैं। समिधा भी अग्नि स्वरूप माना गया है। यदि सूर्य की किरणें अग्नि बन करके, विद्युत बन करके, इनको नहीं तपा सकती, तो वह समिधा नहीं बन पायेगी। वह अपने में मानो देखो समिधा नहीं कहलाती। इसीलिये देखो सूर्य तपा रहा है, चन्द्रमा रस दे रहा है, अग्नि अपनों में उसमें प्रवेश कर रही है, पृथ्वी के परमाणुओं में प्रफुल्लता आ जाती है तो वह अग्निस्वरूप बनकरके, अपने में प्रदीप्त होकर के, देवताओं की हवि बन रही है। ऋषि ने जब इस प्रकार याग के स्वरूप का वर्णन किया तो कागभुषुण्ड जी और लोमश मुनि दोनों मौन हो गये।

याग में आसन की महत्ता

मेरे प्यारे लोमश जी बोले कि हे प्रभु ! ये जो तुम मानो याग में विद्यमान हो तुम्हारा आसन क्या है ? याग में तो आसन भी तो होना चाहिये। उन्होंने कहा प्रभु ! मेरा जो आसन है, मानो देखो मेरा आसन मेरी माँ पृथ्वी है, मेरी प्यारी "आसनः ब्रह्म वाचा:" इसको आसन नहीं कहना चाहिये। यह मेरी माता वसुन्धरा है। ये पृथ्वी है। पृथ्वी मुझे अपनी गोद में धारण कर रही है। उसी के आनन्द में मैं आनन्दित हो करके, अग्नि को प्रदीप्त करने के लिये तत्पर हो रहा हूँ। उन्होंने कहा आसन का प्रश्न है हमारा। हमारा पृथ्वी का कोई प्रश्न नहीं है। उन्होंने कहा कि पृथ्वी को ही तो आसन माना गया है। जब मानव

व्यापकवाद में परिणत होता है, जब आत्मा का आत्मा से मिलान होता है अथवा आत्मा अपने को यज्ञमयी स्वरूप स्वीकार कर लेती है, तो यह जो प्रकृति है इस प्रकृति का एक तत्त्व पृथ्वी भी मानी गयी है। वही तो आत्मा का आसन है, वही तो आत्मा का आसन है। और आनन्द के लिये वो आनन्द रूपी परमात्मा को, चेतन्य देव को, चेतना का ओढ़न बना करके, वह मोक्ष में रत्त रहना चाहता है। इस प्रकार ऋषि को प्रत्येक आभा में उद्धृत कर दिया तो वे मौन हो गये। उन्होंने कहा प्रभु वाक्य तो तुम्हारा यथार्थ है। उन्होंने देखो याग प्रारम्भ कर दिया।

याग की प्रतिक्रियाएँ

वे मुनिवरों देखो सोमकेतु मुनि के द्वारा पर पहुँचे। सोमकेतु मुनि से कहा कि प्रभु ! हमें याग की प्रतिक्रियाओं का वर्णन कराइये। प्रभु ! ये कौन-सा याग कर रहे हैं आप ? उन्होंने कहा कि हम एक याग कर रहे हैं इनमें कौन-सा प्रश्न उत्पन्न नहीं होता। याग तो याग होता है। याग में कौन-कौन सा शब्द नहीं होता। उन्होंने कहा प्रभु कौन तो नहीं होता परन्तु ये तो भिन्न भिन्न प्रकार के यागों का चयन वैदिक साहित्य वर्णन करता है। उन्होंने कहा वैदिक साहित्य उनके लिये वर्णन करता है, जो राष्ट्रीय यागों में परिणत रहते हैं। यहाँ तो **आत्मा को आत्मा में, आत्मा का हूत परमात्मा में प्रदान कर रहे हैं। जैसे मानो देखो अग्नाधान हो करके अग्नि के स्वरूप में मानो देखो अग्नि को ही दृष्टिपात कर रहे हैं, इसी प्रकार चेतना में चेतना का दृष्टिपात कर रहे हैं तो ये आत्म कल्याण के लिये याग हो रहा है।** ये मानो देखो हम कोनों पृथ्वीओं में याग परिणत नहीं कर रहे हैं।

भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों का चयन

मेरे प्यारे देखो कागभुषुण्ड जी ने कहा कि हे भगवन् ! महर्षि

लोमश मुनि को आप इस प्रकार शब्दों में मौन नहीं कीजिये। नाना प्रकार के याग होते हैं, उनका वर्णन कीजिये। एक अश्वमेध याग होता है, एक अजामेध याग होता है, एक वाजपेयी-याग होता है। एक विष्णु-याग होता है एक मानो गोमेध-याग होता है। एक अश्वाकृतियों में अजामेध याग होता है। भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों का चयन वैदिक साहित्य में किया है आप उनका वर्णन क्यों नहीं करा रहे हैं? मेरे प्यारे देखो उन्होंने कहा ऋषिवर तुमने प्रश्न किया है बोलो! कौन से याग का वर्णन चाहते हो। उन्होंने कहा सबसे प्रथम तो हम यह जानना चाहते हैं कि तुम कौन-सा याग कर रहे हो। उन्होंने कहा कि **हम अपने में सामूहिक याग कर रहे हैं जो समूह और धर्म और मानव को मानो सुगठित कराता है उस याग को कर रहे हैं।**

विष्णु याग

उन्होंने कहा प्रियतम, अब हम तुमसे विष्णु याग को जानना चाहते हैं। विष्णु याग किसे कहते हैं? उन्होंने कहा विष्णु याग उसे कहते हैं जो परमपिता परमात्मा के आश्रित हो करके और राष्ट्र को ऊँचा बनाने के लिये, प्रजा को सुख देने के लिये याग किया जाता है वह विष्णु याग कहलाता है।

गोमेध-याग

उन्होंने कहा गोमेध याग कौन-सा है? उन्होंने कहा **गोमेध याग विद्या को कहते हैं।** जो विद्याध्ययन कराता है **आचार्यजनों** के चरणों में विद्यमान हो करके ब्रह्मचारी अपने में अध्ययन कर रहा है मानो देखो वे गो को प्रकाश में पहुँचा रहे हैं पशु को मानो जो प्रकाश में ले जाता है तो मानो वह गोमेध याग कर रहा है। वह गोमेध याग

की प्रतिभा में ले जा रहा है। सुगन्धि दे रहा है परन्तु देखो **आचार्य** इतना सुसज्जित होना चाहिये, आचार्य इतना चरित्र में महान होना चाहिये, जिससे उसके चरित्र की सुगन्धि, उसके विचारों की सुगन्धि, ब्रह्मचारियों को प्रभावित कर सके और अन्तरात्मा में मानो उसकी प्रतिभा का स्रोत हो जाये। ऐसा आचार्य देखो गोमेध याग करता है।

अजामेध याग का वर्णन

मेरे पुत्रो जब सोमेकेतु ने ऐसा कहा तो उस समय महर्षि कागभुषुण्ड जी ने कहा प्रभु ! चलो गोमेध याग तो यह हुआ, परन्तु अजामेध याग किसे कहते हैं ? उन्होंने कहा अजामेध याग, अजा पृथ्वी को कहते । अजा नाम वैज्ञानिकों को कहते हैं, जो अजा पृथ्वी के ऊपर अन्वेषण र रहा है, विचार कर रहा है इसके गर्भ में प्रवेश कर रहा है वह अजामेध याग जो इसमें अजा (अजय) होना चाहता है। अजा के भिन्न-भिन्न प्रकार के स्वरूप माने गये हैं। जैसे अजा नाम मानो देखो अजा (अजय) कहते हैं जो विद्या का अध्ययन करता है और किसी से विजय न हो। वह बुद्धिमान अजामेध याग कर रहा है, तार्किक सिद्धान्त के द्वारा, तार्किक श्रोत्रों के द्वारा, जब वह याग करता है, मानो वह किसी से अजय नहीं हो रहा है। इसी के स्वरूप में जब राजा अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाता है राजा अपने राष्ट्र में प्रजा को और स्वतः राजा अपने विचारों का याग करता है। किसी राजा से मानो दूसरा राष्ट्र आत्मसमर्पण करता है, तो वह अजय रहता है। उसको कोई विजय नहीं कर सकता। विजय कौन होता है जो हीन प्राणी होता है वह विजय होता रहता है। क्यों ? मानो अपने स्वार्थपरता में अपनी लोलुपता में लगा रहता है वह सदैव (दूसरों द्वारा) विजयी होता रहता है। और जो निःस्वार्थ रहता है, निःस्वार्थ प्रजा के मनोबल को

ऊँचा बनाता रहता है। वह महान रूपों को ऊँचा बनाने में लगा हुआ है; अपने में त्याग और तपस्या में परिणत रहता है, परमात्मा का चिन्तन करते हुए, विश्वसनीय रहता है, याग कर्मों में परिणत रहता है, मानो मुनिवरो देखो वह अजामेध याग कर रहा है। संसार में उसे कोई विजय नहीं कर सकता।

मेरे प्यारे देखो जैसे मानव जितेन्द्रिय होता है, जैसे मेरी पुत्री एक जितेन्द्रिय होती है, वह जब गृह में प्रवेश करती है तो अजामेध याग करती हैं। अपने पति के द्वार पर विद्यमान हो करके, अजामेध याग करती है। वह कहती है, कि मैं इसे सन्तान को जन्म देना चाहती हूँ जिससे वह किसी से विजय न हो सके। वह अजय, वो अजय नामक याग करती है। प्रभु का चिन्तन करके उस सन्तान को जन्म देती है, जो जितेन्द्रिय बन करके, त्याग और तपस्या में परिणत हो करके पुत्र किसी से विजय नहीं होता। किसी से अजेता को "अमृतम्" सदैव अजय रहता है। वह हासता को प्राप्त नहीं होता। तो विचार विनिमय क्या ? वेद के ऋषि ने जब इस प्रकार के उच्छिन्त उदाहरण देने प्रारम्भ किये तो बेटा ऋषिवर स्वीकार करते रहे।

अग्निष्टोम् याग की महत्ता

तो मेरे प्यारे उन्होंने कहा कि महाराज यह हमने स्वीकार कर लिया परन्तु अग्निष्टोम् याग किसे कहते हैं ? उन्होंने कहा **अग्निष्टोम् याग उसे कहते हैं जो वृष्टि-याग करना जानता है। वृष्टि-याग करना ही मानो देखो अग्निष्टोम-याग की शाखा कहलायी जाती है।** जब वह वृष्टि-याग करता है। वृष्टि-याग करने वाला जो पुरुष होता है वह तपस्या करता है, अनुष्ठान करता है। वेद के मन्त्रों को चुनौती प्रदान करता है। परम्पिता परमात्मा की अनुपम विद्या का अध्ययन

करता है, और अध्ययन करता हुआ वह त्याग में परिणत होता है। और त्याग में परिणत हो करके, वह गान रूपों में गान गाता है। वाजपेयी बुद्धिमान वाजपेयी गान गा रहा है। **वाजपेयी गान को कहते है।** जब वह गान गाता रहता है, तो उसके मस्तिष्क में अनहद (ललहात) आ जाता है, उसमें अग्नि प्रदीप्त हो जाती है। वाणी एक अग्नि का स्वरूप बन जाता है। हमारे ऋषि मुनियों ने ८५–८५ वर्षों तक इसे साक्षात् किया और ललहात मस्तिष्क में इसको (अग्नि को) लाने का प्रयास किया। और जैसे ही अग्नि का प्रकाश हुआ, उसी स्वरूप में वह अग्नि प्रदीप्त हो जाती है मस्तिष्क में। वह इसी प्रकार गान रूपों में जब गान गाने लगता है तो मेघों में, उसके गानों की प्रतिभा अन्तरिक्ष में चली जाती है। और अन्तरिक्ष में प्रवेश करके जब वह यहाँ याग करता है, उन्हीं शाकल्यों को, उन्हीं औषधियों को एकत्रित करके जब वह याग करता है अग्नि के द्वारा, तो अग्नि देवताओं का मुख्य बन करे, वह उन्हीं तरङ्गों को परिणत करा देती है, जिनमें जल तत्व प्रधान होते हैं। वह मेघों में परिणत हो करके, विद्युत के द्वारा मेघों की उत्पत्ति हो करके, समुद्रों से समन्वय हो करके, चन्द्रमा की क्रान्ति से समन्वय होकर, मेरे प्यारे देखो शनैः शनैः वृष्टि प्रारम्भ हो जाती है।

वाजपेयी याग का वर्णन

परिणाम क्या मानो यहाँ मुनिवरो देखो वाजपेयी याग का वर्णन है "परमब्रह्म वाचो देवाः" वेद का ऋषि कहता है, गम्भीर अध्ययन करता है, उस समय यहाँ देखो गौ के बछड़े की बलि का वर्णन आता है। **गौ के बछड़े की बलि का वाजपेयी याग में वर्णन आता रहता है।** मेरे पुत्रो देखो वह बलि ? अमृतम् ब्रह्माः" **बलि कहते है अर्पित**

करने को, बलि कहते है अपने परिश्रम का नामोकरण बलि कहा जाता है। बलि का अभिप्राय यह है, कि जो अपने को न्यौछावर कर देता है। इसीलिये गऊ का बछड़ा तन्मय हो करके कृषि के, गर्भ को मानो देखो चमड़ी को उधेड़कर के और उसके गर्भ में बीज की स्थापना करके नाना प्रकार के अन्नाद को उत्पन्न कर देता है। इस प्रकार हमारे वाजपेयी यागों का वर्णन आता रहा है। तो विचार विनिमय क्या आज मैं इस सम्बन्ध में विशेष विवेचना न देता हुआ केवल क्या ? मुनिवरो देखो कागभुषुण्ड जी की और सोमकेतु मुनि महाराज की ये चर्चाएँ हो रहीं थीं। उन्होंने कहा धन्य है प्रभु ! हमने आपको कुछ परीक्षा के रूप में नहीं, केवल जानकारी के रूप में कि ये याग कर रहे हैं, इस याग के सम्बन्ध में कुछ जानते हैं, अथवा नहीं।

जल का प्रोक्षण, मेखला की महत्ता

तो मेरे प्यारे देखो वह जो "राजाम् ब्रह्महे अपृतम् देवा प्रव्होः अस्वाहम" जो यज्ञमान बना हुआ था विश्वश्रुवा उसके समीप पहुँचे और उन्होंने कहा हे "यज्ञो भवातम् ब्रह्माः" हे भगवन् ! तुम जो यह याग कर रहे हो और उसमें तुमने जल का प्रोक्षण किया है, इसका याग से क्या सम्बन्ध है ? उन्होंने कहा, याग किसे कहते हैं ? **याग कहते हैं जो पञ्चमहाभौतिक तत्त्वों का एक मिलन कराता है, तो उसका नाम याग कहा जाता है।** जेसे याग में, "यज्ञम् भविते देवाहम् हिरण्य मृथाः" जैसे "आपम् ब्रह्मवाचो देवाः" मानो देखो यह याग कहलाता है। तुम्हें यह प्रतीत है कि परमपिता परमात्मा ने जब पृथ्वी का प्रारम्भ किया था, तो सृष्टि के प्रारम्भ में माता गर्भाशय का निर्माण किया। जब माता के गर्भाशय का निर्माण किया, तो उसमें एक मेखला का निर्माण किया। मेखला में जल रहता है, और जब शिशु का प्रवेश

हो.................अश्रोव्य.................... की प्रवत्ति लाने का प्रयास किया। उसी चलन को ले करके महापुरुषों ने अपनी आभाएँ समाप्त कर दीं।

........................अश्रोव्य...................... तो मैं विशेष चर्चाएँ नहीं पूज्यपाद मैं आज अपने यज्ञमान को अपने हृदय से आशीर्वाद कि उनकी दीर्घ................. और उनका सौभाग्य अखण्ड बना रहे..................... अश्रोव्य....................

निवास स्थान
श्री जगवीर सिंह त्यागी
कैथवाडी

पञ्चयज्ञ और साधना

देखो, मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष, कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ, उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसार होता रहता है, जिस पवित्र वेद-वाणी में उस परमपिता परमात्मा के ज्ञान-विज्ञान का प्रायः वर्णन किया जाता है, जो ज्ञान और विज्ञान में रमण करने वाला है। वह महान् मेरा चैतन्य देव प्रभु कहा जाता है। उसका ज्ञान और विज्ञान इतना नितान्त माना गया है कि वह मानवीय हृदयों में समाहित होता हुआ इस सृष्टि-चक्र को क्रियाशील बना रहा है ! जब हम यह विचार-विनिमय करते हैं कि परमपिता परमात्मा कैसा भव्य है तो वह ऋषि-मुनियों के हृदय में अथवा मानवीय हृदयों में सदैव ओत-प्रोत रहने वाला है।

आज का हमारा वेद का ऋषि क्या कह रहा था कि 'यज्ञं गच्छत प्रभे यज्ञोवस्य देवः वृत्तं लोकाः' वेद का ऋषि यह कह रहा था, मेरे प्यारे महानन्द जी की भी प्रेरणा रहती है, मानो इनकी प्रेरणा बाध्य करती रहती है कि हम यज्ञों के सम्बन्ध में अपना कुछ विचार-विनिमय करें। हमने बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा कि जितने भी प्राणी यहाँ आये हैं, एक मानव ही नहीं जितना भी प्राणीमात्र है वह सर्वत्र एक याज्ञिक बना हुआ है, वह यज्ञ करने के लिए आया है। याग का अभिप्रायः यह है, मानव के लिए ऋषि-मुनियों ने पांच प्रकार के यज्ञों का चयन किया। जैसे, प्रथम ब्रह्म याग कहा जाता है, द्वितीय यज्ञ का नाम देवयज्ञ है, तृतीय का नाम अतिथियज्ञ है और चतुर्थ का नाम बलिवैश्वयज्ञ और पंचम का नाम भूतयज्ञ माना

गया है, जिसको हम पितृयज्ञ भी कहते हैं। ये पांच प्रकार के यज्ञ हमारे यहाँ परम्परा से ही वैदिक साहित्य में निहित हैं।

ब्रह्म-याग

जब हम यह विचार-विनिमय करते हैं कि पांचों प्रकार के जो यज्ञ हैं उनमें सबसे प्रथम ब्रह्म याग आता रहा है। ब्रह्मयाग का अभिप्रायः यह है कि ब्रह्म का चिन्तन करना। प्रातःकाल में ब्रह्म की आभा को जानना और प्रातःकाल की अमृत वेला में ब्रह्मयाग करना। ब्रह्म याग कहते हैं, जो ब्रह्मा को यजमान बना करके स्वयं होता अथवा यजमान बन करके अपना याग करता है, विचार-विनिमय करता है, अनुसन्धान करता है, उसका नाम ब्रह्म याग कहलाया गया है।

जैसा हमने तुम्हें बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा कि सृष्टि का सृजन करने के पश्चात् परमपिता परमात्मा उसका नियन्ता बना हुआ है अथवा उसको क्रिया दे रहा है, उसको क्रियाशील बना रहा है। तो वह जो चैतन्य देव है, वह जो मेरा प्रभु है, वह सृष्टि-चक्र को चला रहा है, उसको गति दे रहा है। इसी प्रकार मानव के जीवन में भी उसकी प्रतिभा निहित रहती है, जैसे सृष्टि का जब प्रारम्भ होता है तो उस समय परमपिता परमात्मा स्वयं ब्रह्मा बनते हैं, यह आत्मा यजमान बनता है, ये जो पंच-महाभूत हैं ये होता बनते हैं, यज्ञों की रचना हो जाती है। उस समय परमपिता परमात्मा सृष्टि रूपी याग का ब्रह्मा बना हुआ है, उद्गान गा रहा है, उद्गान हो रहा है। सत्-गान हो रहा है, ऋत्-गान हो रहा है, वायु और अग्नि दोनों का मिलान हो करके गान गाया जा रहा है। उस देव के कितने सुन्दर उद्गम, उद्गार से यह सृष्टि-याग प्रारम्भ हुआ। उसी नियन्ता के नियंत्रण में कार्य हो रहा है। आत्मा इस यज्ञशाला में कर्म करने वाला है। उस

याग को जानने के लिए, बेटा ! आत्मा इस यज्ञशाला में विराजमान है। आत्मा रूपी यजमान कैसा सुन्दर आत्मा है वह इस संसार को जानता रहता है, वह संसार में अनुसन्धान करता रहता है, लोक-लोकान्तरों को जानता रहता है। विज्ञान में जाता है तो कहीं आध्यात्मिक वाद में परिणत होता है। कहीं भौतिकवाद में रूपावेश हो जाता है।

यह नाना प्रकार की ऋतु वाला यह आत्मवत् अपना कार्य करता रहता है। क्योंकि वह सार्वभौम यज्ञशाला में विराजमान है। **यज्ञशाला में जो क्रिया होती है, उसी क्रिया के अनुसार कहीं यह विचार करने वाला बन जाता है। कहीं भूत-यज्ञ करने वाला लगता है, कहीं अतिथि-यज्ञ होने लगते हैं, तो कहीं देवपूजा होने लगती है। यह ब्रह्म-याज्ञिक क्या विचारता है कि मुझे ब्रह्म का चिन्तन करना है। वह कहीं समाधिस्थ हो जाता है। कहीं जनता में जनार्दन को स्वीकार करके कण-कण में प्रभु का दिग्दर्शन करता है। ऐसा जो महापुरुष होता है, जो अनन्यवत होता है, वह इस ब्रह्म याग को जानता है। सर्वश्रेष्ठ ब्रह्म याग ही माना गया है,** क्योंकि ब्रह्म कहते हैं परमात्मा को और यज्ञ कहते हैं उस संसार की रचना को और रचना हो करके यह संसार चल रहा है। एक लोक दूसरे में निहित हो करके गति कर रहा है। एक अग्नि और वायु मिल करके दोनों गति कर रहे हैं। अन्तरिक्ष और ऋत् गति कर रहे हैं। यह ब्रह्माण्ड ऋत् और सत् में दृष्टिपात् आ रहा है।

विचार-विनिमय क्या कि सबसे प्रथम ब्रह्म-याग है। पति-पत्नी एक स्थान में विराजमान हो करके प्रातःकाल ब्रह्म यज्ञ करते हैं। ऋषि-मुनि विराजमान हो करके ब्रह्मयज्ञ करते हैं। **ब्रह्म का अभिप्रायः है कि ब्रह्म का चिन्तन करना। ब्रह्म की आभा को, ब्रह्म की सृष्टि को जानना। ब्रह्म की आभा को अपने में निहित करने का नाम ब्रह्म-यज्ञ है।**

देव-पूजा

द्वितीय याग का नाम देव-पूजा कहा जाता है, जिसे देव-यज्ञ कहते हैं। हमारे यहाँ दो प्रकार के देवता कहलाते हैं, एक देवता जड़ हैं और दूसरे चैतन्य होते हैं। जड़ देवता, ये पंचमहाभूत हैं। पंच महाभूतों में उसकी रचना है। जैसे सूर्य, चन्द्र और नाना नक्षत्र, ये हमारे देवता हैं, ये देते रहते हैं। चन्द्रमा सोम-अमृत प्रदान करता है। सूर्य हमें तेज देता है, जीवन देता है, ओज देता है, तेज की स्थापना कर देता है। पृथ्वी हमें सुगन्धि देती है, जल हमें अमृत देता है और रस देता है। तेज हमें वायु को प्रदान करती है। वायु हमें प्राण देता है और अन्तरिक्ष हमें शब्द देता है। यह कितना सुन्दर यज्ञ उस मेरे देव का स्वतः ही हो रहा है! जो मानव वाक्य उच्चारण करता है, वायु उसे प्रसारित कर देता है। वायु के भिन्न-भिन्न भेदन माने गये हैं। आयुर्वेदाचार्यों ने वायु की सहस्रों धाराएं मानी हैं। विज्ञान ने लाखों-अरबों धाराएं स्वीकार की हैं। आज मैं विज्ञान के युग में जाकर उन धाराओं का वर्णन करने नहीं आया हूँ। विचार केवल यह देने के लिए आये है कि वह देवपूजा है।

देवपूजा का अभिप्रायः क्या है कि हम देवपूजा करें। पूजा का अर्थ है उनका सदुपयोग करना, उनको क्रिया में लाना। तो प्रातःकाल में मानव याग करता है, द्वापर काल में युधिष्ठिर जैसा प्रातःकाल में देव याग करता रहा है। भगवान् कृष्ण जब प्रातःकाल होता तो यज्ञ करते रहते थे। वे दोनों पति-पत्नी यज्ञ करते रहते थे। आज मैं यज्ञों के सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं दूंगा। यह यज्ञ है, इसको करना हमारा कर्त्तव्य है। यज्ञ में जाना हमारा देवत्व-पूजन है; यह देव पूजा कहलाती है।

पञ्चभूताभा में याग

इसमें ही द्वितीय प्रकार का यज्ञ है। हमें अग्नि को सुगन्धि देना है, हम जितना लेते हैं, दुर्गन्धि के बदले सुगन्धि प्रदान करें। हम वाणी मधुर बना करके वाणी का सुन्दर रस प्रदान करें और अग्नि को हम तेज देते चले जाएं, तेजस्वी बनें। जिसमें वायु की प्रतिक्रिया को जानते रहें और शब्द हमारा मधुर हो जिससे हमारा अन्तरिक्ष ऊंचा बने। ये पांच प्रकार की आभाएं कहलाई जाती हैं।

पञ्चभूत-याग से ब्रह्म-गति

जब यजमान यज्ञशाला में विराजमान होता है तो पुरोहित यही कहता है कि हे यजमान ! 'पंचमहाभूताग्निः ब्रह्मलोकः', यह ब्रह्म-लोक में ले जाती है, **इन पंचमहाभूतों को जानने वाला पुरुष ब्रह्मलोक में चला जाता है।** ऐसा वेद का ऋषि कहता है कि पांचों प्रकार के पंचमहाभूतों को जानने वाला प्राणी ब्रह्मलोक में चला जाता है। अब जब वेद का मन्त्र, वेद का ऋषि ऐसा कहता है तो उसमें एक आश्चर्य आता है कि ऐसा वेद का ऋषि क्यों कह रहा है? आगे जब एक वेद का मन्त्र आया 'पंचं भूत प्रभे वृत्ताः', अब जब यह वेद का मन्त्र स्मरण आया तो इसमें कुछ और दृष्टिपात् आने लगा। जब इस वेद-मन्त्र का विभाजन किया, विभक्त करके इसका सन्धिपात् किया गया तो इसमें क्या-क्या निकला ? इसमें यही आया कि **पंच-महाभूत पांचों मनके हैं और वह मनके एक ऋतु में पिरोये हुए हैं और वह जो ऋत् और सत् है वह 'ओ३म' रूपी धागे में पिरोये हुए हैं। जब 'ओ३म्' रूपी धागे को जाना जाता है, उस सूत्र को जानने वाले को ब्रह्म ही ब्रह्म सदैव दृष्टिपात् आता है और वही ब्रह्म कहलाया जाता है।**

चैतन्य-देव पूजा

तो बेटा ! यह हमारे यहाँ पंच-महाभूतों की प्रतिक्रियाएं, हमारे यहाँ देव-यज्ञ कहलाया है और देव-पूजा, इन पंच महाभूतों को जानता है। ये जड़ देवता हैं। परन्तु एक देवता हमारे यहाँ चैतन्य देवता है। ब्राह्मण, देखो वेद का पठन-पाठन करने वाला उसको हम पुरोहित भी कहते हैं, उसको पराविद्या को जानने वाला भी कहते हैं, जो ब्रह्म के निकट चला गया है। हमारा यजमान कहता है यज्ञशाला में, हे पुरोहितो ! आओ, मेरे यज्ञ को पूर्ण करा करके मुझे पराविद्या में ले जाओ, मैं इस संसार से उपराम होना चाहता हूँ। जब इस प्रकार की आभाएं स्मरण आती रहती हैं तो वह ज्ञान और विज्ञान मानव को ऊर्ध्वा में ले जाता है। उसके पश्चात् यह 'पुरोहितं ब्रह्मे', यह चैतन्य पुरोहित कहलाते हैं, यह 'प्रतिम् ब्रह्मो', देखो पुरोहित के द्वारा यज्ञ होता रहता है। **यज्ञ का अभिप्रायः है कि मानव को अच्छाइयों में परिणित होना है, सुन्दर धाराओं को, धर्म के मर्म को जानना है, देव-पूजा करना है, उनको सुगन्धित करना, यह यज्ञ कहलाया गया है। जहाँ यह यज्ञ है, उसको देव-यज्ञ कहते हैं, जहाँ दोनों चैतन्य और जड़ देवताओं की पूजा होती है। पूजा का अर्थ है, उनको सदुपयोग में लाने का नाम पूजा कहलाई जाती है।**

अतिथि-याग

आगे चल करके वेद का ऋषि कहता है कि तृतीय जो यज्ञ है वह अतिथि-यज्ञ है। अतिथि कौन होता है ? 'अतिथि प्रभावृत्तः' जो किसी की तिथि निश्चित न हो और वह श्रीमान् गृह में आ जाये तो उसको अतिथि कहते हैं। उसको नाना प्रकार के पदार्थों का पान कराना, उदर की पूर्ति कराना, उसको अतिथि याग कहते हैं। यजमान कहता

है कि हे अतिथि ! आ, तू मेरे गृह के साकल्य को पान कर, तू अपने पुण्य को मुझे दीजिए। देखो, पुण्यवान् के गृहों में ही बुद्धिमान् अतिथि आते रहते हैं। कौन हैं ? **जो बुद्धिमान तपस्वी होता है, वह जो गृह में आता है, अतिथि बन करके वह अपने पुण्यों को त्याग देता है। जब वह गृह में त्याग देता है तो वह 'पुण्यात् पुण्यात् देवस्तः', वेद का ऋषि कहता है कि वे पुण्यवान् पुरुष होते हैं, जिन गृहों में महापुरुष आते रहें और महापुरुषों की तरंगें होती रहें। वह अपने शब्दों के चित्रों को गृह में त्याग देता है।** बेटा ! मैं विज्ञान में जाना नहीं चाहता हूँ। क्योंकि मेरे प्यारे महानन्द जी को भी दो शब्द उच्चारण करने हैं। विचार क्या कि मैं कहीं इस विचार को बहुत ऊर्ध्व-गति में ले जाऊं। इतनी ऊंची उड़ान नहीं उड़ना चाहता हूँ। क्योंकि अतिथि का अभिप्रायः यह है कि वह अपने पुण्य को त्याग देता है और वह यजमान के हृदय की आभा को अपने समीप ले जाता है और हृदय में प्रसन्नता को मुक्त कर देता है मानो वह अतिथि-यज्ञ कहलाया गया है।

बलिवैश्व-यज्ञ

बलिवैश्व वह है जो प्राणी के लिए जीवन में सुगन्धि देते हैं। प्राणों को भी न्यौछावर कर देते हैं। उन पक्षियों के लिए जो वाणी से वाक्य उच्चारण नहीं कर सकते। वाक्य उच्चारण तो कर लेते हैं परन्तु वह विद्या परिश्रम से ही जानी जाती है। आज उन प्राणियों को देना, हमारा बलिवैश्व-यज्ञ है। अग्नि को देना, अग्नि उन्हें प्रदान कर देती है। अग्नि उसका हव्य बन करके, उनको प्राप्त करा देती है, उसको बलिवैश्व-यज्ञ कहते हैं।

पितरयज्ञ

एक भूत-यज्ञ कहलाया जाता है, जिसमें पुरोहितजन होते हैं

और जितने महापुरुष होते हैं उनमें माता और पिता भी आते हैं, उनका पूजन करना अर्थात् उनका यथोचित् उनकी इच्छाओं की पूर्ति करने का नाम उनकी पूजा कहलाई जाती है। आज जब उनकी सेवा की जाती है, उनका युक्त आदर किया जाता है, आचार्यों का भी और माता-पिता का भी वह हमारे यहाँ पितृ-यज्ञ कहलाते हैं। पितृ कौन होते हैं? पितर की बहुत विशाल व्याख्या है, **माता-पिताओं का नाम भी पितर है, राजा को भी पितर कहते हैं, पितर नाम आचार्यों का भी है, पितर नाम, परमात्मा का भी है, पितर नाम अग्नि का भी है, पितर वायु को भी कहा गया है, पितर नाम अन्तरिक्ष को भी कहते हैं, पितर नाम यज्ञ को भी कहा गया है और पितर नाम हमारे यहाँ राजाओं का भी है, जो अधिराज होता है उसको भी पितर कहते हैं। पितर का अभिप्रायः है कि जिससे हमारी रक्षा होती हो उसी का नाम पितर कहलाया गया है।** मैं पितरों की व्याख्या देने तो नहीं आया। समय मिलेगा मैं इसकी व्याख्या प्रकट करूंगा।

आज का विचार क्या कि हम पंचमहायज्ञों के करने वाले बनें। इन पंचमहायज्ञों को करने वाला यजमान अपने गृह को सुन्दर बनाता है। अपने गृह को पितृ-यागी बनाता है, देव-यागी बनाता है, विचित्र-यागी बना करके इस संसार-सागर से पार होता है। अब मैं अपने वाक्यों को विराम देने जा रहा हूँ। मेरे प्यारे महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगे।

महानन्द जी—"ओम् यज्ञावृत्तं मां हृदयवस्यं प्रतिगतं पूषण्याः।" मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ! मेरे भद्र ऋषि मण्डल ! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी-अभी कुछ यज्ञों के सम्बन्ध में अपनी विवेचना प्रकट कर रहे थे। मैं अपने वाक्य कुछ प्रकट करूं तो मानो सूर्य के समीप एक जुगनू का कार्य कर सकूंगा। विचार क्या है ? मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी-अभी

पंच महायज्ञों के सम्बन्ध में अपनी विवेचना प्रकट कर रहे थे। अपना व्यापक रूप प्रकट रहे थे कि याग कितने प्रकार के होते हैं। परन्तु जब मुझे यह काल अथवा यह समाज स्मरण आने लगता है तो मेरा अन्तरात्मा ऐसा विचित्र सा बन जाता है कि संसार को मैं किस रूपों में दृष्टिपात् करूं ? मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह वाक्य प्रकट कराना चाहता हूँ कि जहाँ हमारी आकाशवाणी जा रही है वहाँ 'सामगानं यज्ञरूपाः देवताः', वहाँ एक सुन्दर यज्ञ रूपों में मानो अपने सूक्ष्म शरीर के द्वारा याग को दृष्टिपात् करता रहा हूँ। जब मैं इस कर्मकाण्ड की यज्ञ-वेदी पर प्रवेश करता हूँ अथवा कर्मकाण्ड के क्षेत्र में प्रवेश करता हूँ तो ऐसा दृष्टिपात् होता है कि न होने से कुछ होना सुन्दर माना जाता है। 'कर्मकाण्डोऽवृत्त देवाः हिरण्यं ब्रह्मलोकाः', परन्तु जो कर्मकाण्ड की पद्धति है, वह विचित्र है। वह मानो प्रभावशाली है। रहा यह वाक्य कि आज मैं यजमान को अपने हृदय से एक वाक्य प्रकट करना चाहता हूँ—हे यजमान ! तेरा हृदय सदैव ऊंचा बनता रहे। तेरे गृह में, तेरी मानवता में सदैव मानवता का प्रसार होना चाहिए। **देवता और यज्ञ हमें यही शिक्षा देते हैं कि मानव बनो, जैसे वृक्ष पर फल आने पर वह स्वयं अपने में नमः हो (झुक) जाते हैं इसी प्रकार धर्म और यज्ञ यह यजमान का फल होता है। इस कार्य को करने के पश्चात् स्वयं ही मानव नम्र हो जाता है। इसलिए नमः की आवश्यकता संसार में सदैव रहती है।** मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने इससे पूर्व शब्दों में यह कहा था कि प्रत्येक प्राणी को 'नमः' में परिणित रहना चाहिए, नमः होना चाहिए।

आज मैं, हे ब्राह्मण ! तेरा उद्‌गार सदैव ऊंचा बना रहे। मेरी हृदय से यह कामना रहती है कि हे ब्राह्मण ! हे सामगान गाने वाले ! देखो, सामगान तो किसी काल में गाया जाता था। जब उदात्त और अनुदात्त स्वरों के सहित सामगान गाया जाता है तो देवता भी प्रसन्न

हो जाते हैं। परन्तु आज वर्तमान के इस काल में पहुंच रहा हूँ तो, हे ब्राह्मण ! तेरा कण्ठ तेरी मानवता सदैव ऊर्ध्व गति को प्राप्त होती रहे। तेरे गृह में सात्विकता का प्रसार होता रहे, जिससे सत् में रमण करने वाला प्राणी अपने मानवत्व को ऊंचा बनाता है। रहा यह वाक्य कि मानव के जीवन मैं नाना आपत्तियां आती रहती हैं; जीवन में अन्धकार और प्रकाश दोनों का आ जाना स्वाभाविक कहलाया जाता है, उस स्वभाव को अपनी आभाओं में रमण कर देना चाहिये।

याग, पाखण्ड नहीं है

आज का मानव कहता है कि यज्ञ तो पाखण्ड है। परन्तु जब मैं यह जानना चाहता हूँ कि मानव के द्वारा इस राष्ट्र को दूषित करना पाखण्ड नहीं है तो क्या परमात्मा को न मानना पाखण्ड नहीं है। परमात्मा को, अपने को न मानना भी तो पाखण्ड कहलाया जाता है। मैं पाखण्ड की व्याख्या कहां तक कर पाऊंगा। अग्न्याधान करने से देवताओं का यदि दूत बन गया है और दूत बन करके वह सुगन्धित कर रहा है, देवताओं को वह ओज दे रहा है, इसको मानव पाखण्ड कहता है, तो यह मानव का दुर्भाग्य नहीं तो क्या है? क्योंकि पदार्थ-विद्या को न जानने वाला प्राणी उसको पाखण्ड की दृष्टि से उच्चारण करता है। क्योंकि वह पदार्थ-विद्या को नहीं जानता, वह परमाणु-विद्या को नहीं जानता। आज जो मानव परमाणु-विद्याशाली हैं परन्तु उनका गम्भीर अध्ययन नहीं है। यदि उनका गम्भीर विचार हो तो इसको कौन पाखण्ड कह सकता है ? प्रत्येक मानव पाखण्ड तो उच्चारण कर देता है, परन्तु पाखण्ड की मीमांसा नहीं जानता। **'पाखण्ड उसे कहा जाता है, जो अपने मानव-जीवन को अन्धकार में ले जाता है, अज्ञान में ले जाता है, वह महान् पाखण्ड कहलाया जाता है।**

यजमान और उद्गाता-ब्राह्मण को आशीर्वाद

मैं कहां चला गया हूँ, मैं पाखण्ड की भी चर्चा देने नहीं आया हूँ। मैं केवल यह अपने पूज्यपाद गुरुदेव को विचार देने आया हूँ, अपना वाक्य प्रकट करने आया हूँ कि भगवन् ! यह जो समाज है, यह जो मानव है, यह कहां जा रहा है ! आधुनिक राष्ट्र का जो समाज है, राष्ट्रीय जो पद्धति है, वह कहां जा रही है ! मैं राष्ट्र के ऊपर तो अपने विचार देने नहीं आया हूँ, मैं तो केवल, हे उद्गान गाने वाले ब्राह्मण ! तू अपने उद्गार को ऊंचा बनाता चल। तेरी वाणी में सरसता होनी चाहिए। तेरी वाणी में पवित्रता होनी चाहिए। जहाँ वेदों का पठन-पाठन करना बहुत जरूरी है परन्तु वेद के पठन-पाठन के पश्चात् गम्भीर होना चाहिये। यह परमात्मा की कृपा हो जायेगी तो गम्भीरप्रायः दृष्टि आने लगेगी। प्रत्येक मानव को गम्भीर बनना है। प्रत्येक मानव को गम्भीर बन करके अपने मानवीय यज्ञ को ऊंचा बनाना है। जिससे यज्ञ पवित्र बन करके हम इस संसार-सागर से पार हो जाएं।

पूज्यपाद गुरुदेव अभी-अभी यज्ञों के सम्बन्ध में अपना विचार दे रहे थे। परन्तु मुझे अब आज का राष्ट्रवाद स्मरण आता है, इस राष्ट्र के चयन की चर्चाएं आती हैं तो मेरा हृदय कभी-कभी दुःखित हो जाता है। कहीं-कहीं व्याकुल हो जाता है और यह कहता है कि अब मैं क्या करूं ? मानो देखो, वह परमपिता परमात्मा की महत्ता, उसकी प्रतिभा को अपनाना ही हमारा कर्त्तव्य कहलाया जाता है। उस महत्ता को अपनाना हमारी मानवता कहलाई जाती है। हे यजमान ! तू सपत्नीक अपने जीवन को ऊंचा बना। मेरी तो सदैव यह कामना रहती है कि तेरा जीवन ऊंचा बने और गृह में सदैव प्रसन्न रहने वाले प्राणी हों। बालक-बालिकाएं दर्शनों में पारायण होने चाहिए। ऐसी मेरी कामना रहती है। हे होताजनो ! तुम यजमान को ऊंचा बनाओ। तुम

यजमान के लिए यज्ञ करो। मानो 'यज्ञं ब्रह्म गच्छो योनि वृत्ताः यज्ञाः', वेद के ऋषि, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई काल में वर्णन करते हुए कहा था कि 'यज्ञ ब्रह्मे योनिमता वृत्तेः', मानो यह संसार, परमात्मा रूप ये प्रकृति रूप जो वृत्तियां हैं, ये योनि रूप में संसार को जन्म दे रही हैं। इसी प्रकार मुझे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई काल में वर्णन करते हुए कहा था कि यह संसार विचित्र बना रहता है। ब्राह्मण ! तू उद्‌गान गाने वाला बन। हे ब्राह्मण ! जब समाज में, राष्ट्र में ब्राह्मण होता है, विवेकी ब्राह्मण होता है, उस काल में यह समाज अवरेत (उन्नत) बन जाता है।

विनाश का कारण सामाजिक रूढ़ियां

मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कहा था, उन्होंने कई काल में महर्षि भारद्वाज की चर्चा प्रकट की। **आज मैं यह उच्चारण कर सकता हूँ कि कुछ काल के पश्चात् यह विज्ञान पराकाष्ठा पर पहुंचेगा और विज्ञान का दुरुपयोग होना यह भी पराकाष्ठा पर पहुंचेगा और उसके पश्चात् रक्तभरी क्रान्तियां उत्पन्न हो जाएंगी समाज में।** परिणाम क्या कि भारद्वाज मुनि ने पूज्यपाद गुरुदेव के शब्दों में यही कहा था। पुज्यपाद गुरुदेव को मैं विज्ञान की चर्चा करता रहता हूँ। आज के मानवीय क्षेत्र में जो विज्ञान है, वे अन्तरिक्ष के गृहों में रमण कर रहे हैं, कहीं चन्द्रमा की परिक्रमा हो रही है, कहीं मंगल में जाने वाले यन्त्रों का मानो देखो मंगल में जा करके अपनी आभा में जाने वाले हैं। कई प्रकार के रूढ़िवादी प्राणी हैं, जो आज के विज्ञान को यह कहते हैं कि मंगल में कोई नहीं जा सकता। कुछ रूढ़िवादी कहते हैं कि चन्द्रमा में कोई नहीं जा सकता। कुछ रूढ़िवादी ऐसे हैं, जो विज्ञान के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते। वे क्यों नहीं करते ? उसका मूल कारण है, रूढ़ि। वह धर्म की रूढ़ि है, वह धर्म की रूढ़ि नहीं,

वह राष्ट्र के विनाश की रूढ़ि कहलाती है। वह धर्म की रूढ़ि नहीं है। जैसे मुहम्मद के मनाने वाले हैं, ईसा के मानने वाले हैं और भी नाना जो विज्ञान के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते, वे ऐसे रूढ़िवादी हैं कि राष्ट्र का विभाजन करने वाले ही रूढ़िवादी बने हुए हैं। क्योंकि राजा, समाज में सुमति न होने के कारण विचारों का परिवर्तन नहीं कर सकता। क्योंकि यदि राजा पवित्र हो और महाभारत काल को दृष्टिपात् करे, त्रेता के काल को दृष्टिपात् करे, उससे पूर्व काल को दृष्टिपात् करे तो एक ही धर्म के मर्म को जानने वाले प्राणी हों, रूढ़िवाद को त्यागने वाला समाज हो। विज्ञान उसमें निहित हो तो देखो वह जो राष्ट्र और समाज है, वह ऊंचा बनेगा। और, जब यहाँ दो प्रकार के प्राणी होते हैं, एक तो विज्ञान के अस्तित्व को नहीं मान रहा है और मृत्यु के अस्तित्व को मान रहा है, और एक कहता है मृत्यु नहीं है केवल विज्ञान ही है। यह जो समाज है, यह क्या है ? यह विज्ञान से, अपनी बुद्धि से स्वतंत्र हो करके जब नहीं विचारता परमात्मा के राष्ट्र को और धर्म के मर्म को तो वह रूढ़ि बन करके राष्ट्र के लिये विभक्त बनाने वाला एक समूह बन जाता है और समूह बन करके राजा को नाना प्रकार की क्रान्तियों में परिणित करके वह समाज राष्ट्र के बटवारे में प्रसन्न युक्त हो जाता है।

हे राजा ! यदि तू समाज को ऊंचा बनाना चाहता है तो रूढ़ियों को समाप्त करने का प्रयास कर। तेरे राष्ट्र में महत्ता आ जाएगी। तेरे राष्ट्र में दार्शनिकता और विवेक आ जाएगा। इसलिए आज तुझे विचारना है कि तू अपने राष्ट्र में एक महत्ता को लाने का प्रयास कर। मैं इन वाक्यों को इसलिए उच्चारण कर रहा हूँ। क्योंकि वेद-मन्त्र ऐसा उच्चारण करते हैं। कोई इस नियम को नहीं मानेगा तो मेरा क्या कर सकता है। परन्तु मेरे यह उदगार अन्तरिक्ष में गति करेंगे।

आज का हमारा विचार क्या कि राजा को सुन्दर बनना चाहिए। राजा को पवित्र बन करके अपने राष्ट्र में धर्म और मानवता का प्रसारण करके सबसे प्रथम रूढ़िवाद को समाप्त करना चाहिए। जब समाज की रूढ़ि चली जाती हैं तो विचारों में भेदन नहीं होता और जब विचारों में भेदन नहीं होता तो रक्तभरी क्रान्तियां भी नहीं होतीं। विचार-विनिमय हमारा यह है कि हम क्रान्ति को लाना चाहते हैं। परन्तु क्रान्ति तो स्वतः आ जाती हैं। वह क्रान्ति कैसे आती है ? जब विज्ञान का दुरुपयोग होने लगता है। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव निर्णय कराते रहते हैं कि ब्रह्मचारी विद्यार्थियों को उन चित्रावलियों में नहीं जाना चाहिए, जिन चित्रावलियों में रमण करके मानवता समाप्त हो जाती है, विज्ञान का दुरुपयोग होता है। विज्ञान के दुरुपयोग को पान करने वाला राजा नहीं होना चाहिए। अन्यथा यह राष्ट्र यह समाज अपवित्र बन जाता है। इसलिए **राजा को चाहिए कि अपनी राष्ट्रीय पद्धति में ऐसा कोई विचार, ऐसा कोई चित्रण नहीं होना चाहिए जिससे अश्लीलता आ जाए। ब्रह्मचारियों का ब्रह्मचर्य दूषित हो जाए, ब्रह्मचारिणियों का ब्रह्मचर्य दूषित हो जाए। संघर्ष हो करके क्या बनता है कि नाना प्रकार के रोग बलवान हो जाते हैं। नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं और उन रोगों के हो जाने का परिणाम क्या होता है कि शरीरों में नाना विष आ जाते हैं और विष के आने पर और नाना प्रकार के रोग हो जाते हैं।** उसका परिणाम यह है कि वह रोगों में परिणित होते रहते हैं।

मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को इन वाक्यों को निर्णय कराने जा रहा हूँ कि प्रत्येक मानव को अपने जीवन में विज्ञान को जानना चाहिए। आज का मानव विज्ञान में परिणित हो रहा है, आज का मानव नाना प्रकार के अणु-परमाणुओं को एकत्रित करने में लगा हुआ है। एक ऐसा यंत्र आज का मानव बना रहा है जैसे सूर्य की किरणें आती हैं और सूर्य की किरणें प्राणवर्धक हैं परन्तु उससे जो प्राणवर्धक वायु

है उन परमाणुओं को यन्त्रों में सींच लेता है और वह जो सूर्य पृथ्वी के अन्तर्गत रेखाएं हैं, सूर्य की किरणें शीतल हो करके पृथ्वी पर आती हैं, वह रेखा उन किरणों को नग्न बना देती है। क्योंकि प्राण तो उसमें से खींच लिए यन्त्र ने और जिस राष्ट्र को भस्म करना चाहेंगे उससे वह यन्त्र प्राणवर्धक वायु को अपने में धारण करने के कारण वह राष्ट्र का राष्ट्र, प्राणीमात्र उस राष्ट्र का भस्म हो जाएगा। आज का वैज्ञानिक इन यन्त्रों को निर्माण करने जा रहा है। भारद्वाज मुनि महाराज ने लाखों वर्षों पूर्व इन यन्त्रों को जान लिया था। परन्तु आज का वैज्ञानिक विश्लेषण कर रहा है। ऐसे-ऐसे यन्त्र जिससे राष्ट्र का राष्ट्र भस्म हो जाए। ऐसा यंत्र कि राष्ट्र अपने आंगन में विराजमान है और लगभग एक सहस्त्र योजन की दूरी पर वह राष्ट्र को भस्म करके वह यन्त्र विध्वंसक हो सकता है। ऐसा वैज्ञानिक बन रहा है। परन्तु **हे भोले प्राणियो ! यदि तुम विज्ञान को ऊंचा बनाते चले जा रहे हो इसका मैं कोई विरोधी नहीं हूँ परन्तु जहाँ प्राणियों के नष्ट होने के लिए प्रयास किया जाता है, अरे, वहाँ प्राणियों के जीवन-रक्षा का भी तो कोई प्रयास होना चाहिए। प्राणीमात्र में जीवन होना चाहिए और वह जीवन कैसे आएगा ? वह विवेक से आएगा, आध्यात्मिकवाद से आएगा।**

आज का समाज, विज्ञान को ऊंचा बनाता चला जा रहा है। आध्यात्मिकवाद को तिलांजलि प्रदान कर दी है। उसका परिणाम क्या होगा ? उससे रक्तभरी क्रान्ति आ करके समाज अग्नि के मुख में परिणित हो जाएगा। **मैं उन प्राणियों को सौभाग्यशाली स्वीकार करता हूँ जो प्राणी याग जैसे कर्म में अपना विश्वास करते हैं। जो याग है, वे शब्द अन्तरिक्ष में जाते हैं, सुगन्धि युक्त मानो वही चित्र बन करके अन्तरिक्ष में वायु का विभाजन करते हैं। तरंगों का विभाजन करते हैं, सुगन्धि को देते हैं, वही तो मानव का जीवन बन करके रहता है।** मेरे पूज्यपाद

गुरुदेव ने ऐसा कई काल में दर्णन कराते हुए कहा है परन्तु जब मैं आधुनिक काल के राष्ट्र नार कों को दृष्टिपात् करता हूँ तो वह मुझे ऐसा विचित्र सा प्रतीत हो रहा है कि जिस समाज में जिस काल में विचारक पुरुष नहीं रहते राष्ट्र में, विवेकी पुरुष नहीं रहते, अरे ! राष्ट्र का आत्मा ही विचारक पुरुषों का है यदि वही नहीं रहेंगे तो यह राष्ट्र कितने समय तक जीवित रहेगा ? मुझे तो ऐसा प्रतीत हो रहा है कि यह राष्ट्र बहुत सूक्ष्म समय तक जीवित रहेगा और इसमें अग्नि के काण्ड हो करके अपनी आभा में नष्ट हो जाएंगे।

आज का विज्ञान और भस्मासुर-गाथा

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक वाक्य प्रकट कराते रहते हैं। वह बहुत पुरातन काल का वाक्य है। महाराजा भस्मासुर की गाथा प्रकट करते हैं। महाराजा भस्मासुर, महाराजा शिव के शिष्य कहलाते थे। उन्होंने जब महान् तप किया तो तप करने के पश्चात् शिव के द्वारा (समीप) एक कंगन था। वह कंगन उन्हें प्रदान कर दिया और यह कहा कि जिसके मस्तिष्क के ऊपरले भाग में यह कंगन छू जायेगा और जो तुम वाणी से कहोगे वही यह कर पायेगा। उसको जीवन देना चाहते हो तो जीवन दे सकोगे, मृत्यु को उच्चारण करना चाहोगे तो मृत्यु आ जाएगी। महाराजा भस्मासुर ने वह कंगन स्वीकार कर लिया और एक समय वह तप करने, के पश्चात् महाराजा कैलाश के द्वारा पहुंचे। महाराजा शिव के द्वारा पहुंचे और वहाँ नृत्य होने लगा तो महाराजा भस्मासुर ने यह कहा कि हे शिव मुझे तो यह सती चाहिए। वह सती पर मोहित हो गया। मोहित हो करके यह कहा, मुझे यह सती चाहिए। शिव महाराज बोले, अरे भस्मासुर ! ऐसा क्यों ? उन्होंने कहा कि यदि नहीं दोगे तो मैं इस कंगन से तुम्हें भस्म करूंगा। वह कंगन उन्हीं के प्राणों का पिपासु बन गया, शिव के प्राणों का पिपासु

बन गया। महाराजा शिव ने कहा कि मुझे कुछ अवकाश दिया जाये। वह विष्णु के द्वारा पहुंचे, विष्णु ने कहा कि इसको हम नहीं जानते। इन्द्र के द्वारा पहुंचे परन्तु इन्द्र ने भी यही उत्तर दिया। ब्रह्मा के द्वारा पहुंचे, उन्होंने भी यही उत्तर दिया। अन्तिम में क्या हुआ, अब मैं क्या करूं? बुद्धिमान ऋषि-मुनियों ने कहा कि हे शिव ! तुम ऐसा करो कि महाराजा भस्मासुर का और सती दोनों का नृत्य कराओ और नृत्य करते-करते जहाँ सती का हाथ जाएगा, वहीं भस्मासुर का और स्वयं जब उनका भुज, वह कंगन उनके सिर के ऊपरले भाग में जायेगा, उस समय तुम 'भस्म' कह देना। वह स्वतः भस्म हो जाएगा। यह युक्ति ऋषियों ने प्रकट कराई। अब महाराजा शिव भस्मासुर के द्वारा आये। भस्मासुर ने कहा कि कहो, शिव ! मुझे सती को प्रदान करो। उन्होंने कहा कि मैं प्रदान करने के लिए युक्त हूँ। परन्तु सती का नृत्य मुझे बहुत प्रिय लगता है, तुम भी इसके साथ में नृत्य करो, ऐसा ही नृत्य करो जैसा सती करे। महाराजा भस्मासुर बोले, बहुत प्रिय ! उनका नृत्य होने लगा। पार्वती सती का जहाँ भी भुज जाता था, वहीं उनका भुज पहुंचा, जब कंगन ऊर्ध्व भाग में पहुंचा, कंठ के ऊपरले भाग में तो महाराजा शिव ने 'भस्म' कहा तो वह स्वतः उस कंगन से भस्म हो गया।

परिणाम क्या कि आज का जो विज्ञान है वह भस्मासुर की भांति है। यह समाज अपने ही विज्ञान में स्वतः नष्ट हो जाएगा वह काल आने वाला है। इसी प्रकार यह जो विज्ञान है, यह बहुत ऊर्ध्व गति वाला विज्ञान है। अरे, भोले प्राणियो ! तुम जानते नहीं कि परमात्मा का प्रकाश कहां नहीं है, कौन सा स्थान ऐसा है, जहाँ परमात्मा का प्रकाश नहीं है ! अरे ! रूढ़ि त्यागने का प्रयास करके विज्ञान के क्षेत्र से होते हुए तुम आध्यात्मिक मार्ग को प्राप्त करो यदि तुम महत्ता चाहते हो। मानव याग चाहता है तो विज्ञान को जान करके आध्यात्मिकवाद में प्रवेश कर जाओ, जिससे तुम्हारा मानवीय जीवन सुन्दर बन जाए।

मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कई काल में प्रकट कराते हुए कहा—कि यह समाज कहां जा रहा है ! आधुनिक काल का जो राष्ट्रवाद है, वह विचारक नहीं है यदि विचारक होता तो एक वैदिक-धर्म और वैदिक पताका होनी चाहिए, वही पताका (ओ३म् की) तुम्हारा राष्ट्रीय ध्वज होना चाहिए। उसी ध्वज के द्वारा तुम अपने राष्ट्र में एक ध्वजा को ले करके मानो तुम एकता को लाना चाहते हो तो सबसे प्रथम रूढ़ि को समाप्त करना होगा। यदि रूढ़ियां समाप्त नहीं हुईं तो एकता कदापि भी नहीं ला सकते। क्योंकि रूढ़ि क्या है ? वह राष्ट्र को स्वप्नवत दृष्टिपात् करती रहती है। रूढ़ि कहते हैं कि हमारा आगे जन समूह आने वाला है, हमारी राष्ट्र की पद्धतियां बनेंगी, ऐसा विचार, जिस राजा के समाज में रूढ़ियों में हो, वह विनाश को प्राप्त हो ही जाता है।

हे राजा ! यदि तू राजा बनना चाहता है, समाज को ऊंचा बनाना चाहता है, धर्म और विज्ञान को ऊंचा बनाना चाहता है तो इन रूढ़ियों को समाप्त करता चल। इनको वास्तविक मार्ग को देता चल और वास्तविक मार्ग धर्म के और विज्ञान के द्वारा प्राप्त होगा। आज इस सम्बन्ध में मैं कोई विशेष चर्चा देने नहीं आया हूँ। जो मानव -विज्ञान के विज्ञान को भी स्वीकार नहीं करता, ज्ञान को भी स्वीकार नहीं करता वह कहता है कि प्रभु ही जाने। अरे ! प्रभु तो जानता ही है प्रभु तो सबको जानता है परन्तु जो तुम्हारी अन्तरात्मा में विराजमान है तुम्हारी अच्छाइयों में भी तो परमात्मा है। अच्छाइयों को लाने का प्रयास तो करो। अच्छाइयों को लाना ही तो तुम्हारा जीवन है। याग में आहुति देना वह परमात्मा का संसार रूपी याग जो सृष्टि के प्रारम्भ में उत्पन्न किया वह प्रारम्भ हो रहा है, वह चल रहा है याग, उसमें अच्छाइयों की आहुति दो। और दूरितों को समाप्त करो। यही तो तुम्हारा जीवन है, इसको तो मानव जानता ही है। प्रभु के क्षेत्र में जाते रहो और

अपने में प्रयास करते रहो। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह उच्चारण करना चाहता हूँ कि हे प्रभु ! ऐसी प्रार्थना करो जिससे राष्ट्र-नायकों की बुद्धि पवित्र बन जाएं। शुद्ध और निस्वार्थी हो करके वे राष्ट्र को ऊंचा बनाएं। वे स्वार्थ में आ करके ध्रुवा में न जाएं, ऐसी मैं प्रभु से याचना करता हूँ।

आदर्श राजा

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ! एक समय जब मैं पूज्यपाद गुरुदेव की शरण में आया तो उन्होंने आश्रम से प्रस्थान किया भिक्षा के लिये। क्योंकि याग के लिए कुछ कर्मकाण्ड युक्त करना था। तो वह सौमनक नामक राजा के यहाँ पहुंचे, सौमनक नाम का राजा यह मनु वंश में था। उनकी पत्नी का नाम सुशीला था। राजा और वे दोनों अपने गृह में स्वयं अपना कला-कौशल भी करते थे। उनके कृषि का उद्योग था। वे कृषि में अन्न उत्पन्न करते थे। गऊ उनके द्वारा थी, गौ-घृत के द्वारा और अपनी कृषि करके उस अन्न को पान करते थे। और राष्ट्र का पालन करते थे। प्रजा को कर्त्तव्य में लाने का प्रयास करते थे। उस समय मैं साधना करता था। पूज्यपाद गुरुदेव मुझे राजा के यहाँ ले गये। राजा ने स्वागत किया, चरणों को छूकर आसन को त्याग दिया, राज-स्थली को त्याग दिया और उनके चरणों में ओत-प्रोत हो करके बोले कि गुरुवर ! कैसे गमन हुआ ? कैसे कष्ट किया ? मुझे वहीं से आज्ञा दे देते। मैं आपके द्वारा आता और राष्ट्रीय वाहन में लाने का प्रयास करता। गुरुदेव ने कहा कि कोई बात नहीं, राजन् ! हम तुम्हारे आसन पर आये हैं, तुम्हारे आसन को दृष्टिपात् करने की उत्कट इच्छा थी। राजा ने कहा कि आप क्या पान करोगे ? तो गुरुदेव कहते हैं कि हम तुम्हारे राष्ट्र का भोजन प्राप्त नहीं करेंगे। राजा कहता है कि प्रभु ! क्यों ? मेरे राष्ट्र का जो अन्न है, वह पाप का अन्न नहीं

है। मेरे राष्ट्र का जो अन्न है, वह स्वयं मेरी पत्नी और मैं (हम दोनों) कला-कौशल करते हैं, कृषि में उद्गम करते हैं और उस अन्न से हम अपने उदर की पूर्ति करते हैं। तो पूज्यपाद का हृदय गद्गद् हो गया। उन्होंने नाना पदार्थों का पान कराया। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को तो वह काल स्मरण है परन्तु कुछ अन्न पान किया। राजा हो तो ऐसे हों। मैं प्रभु से यही कहता हूँ कि ऐसे विवेकी राजा होने चाहिए। स्वार्थी राजा नहीं होने चाहिये कि राष्ट्र नष्ट हो जाये या न रहे परन्तु हम राजस्थली को न त्यागें।

आधुनिक राजा और साधु

आज का समाज कहता है, आज का सन्यासी, आज का तपस्वी वास्तव में तो तपस्वी ही नहीं है और कोई तपस्वी राजा के द्वारा चला भी जाये तो राजा अपनी राजस्थली को त्यागने के लिए तत्पर नहीं है। क्यों नहीं है ? क्योंकि कहीं साधु ही इस राष्ट्र को न अपना ले ! यह प्रकृति बनी हुई है आज के राष्ट्र की कि यह साधु ही न अपना ले राष्ट्र को और साधु की यह प्रवृत्ति है कि यदि उसे उस स्थली पर नियुक्त कर भी दिया जाये तो हो सकता है कि वह राज-स्थान को त्यागने के लिए तत्पर न हो। इस प्रकार का समाज का जीवन जब बन जाता है तो समाज कैसे ऊंचा बनेगा ? मैं जानना चाहता हूँ कि आध्यात्मिकवाद कैसे पनपेगा ? आज जब मैं साधु के द्वार पर जाता हूँ, आधुनिक काल के साधु को विचारता हूँ तो वह तो द्रव्य चाहता है, द्रव्यपति बनना चाहता है, ऊंचे-ऊंचे भवनों में ऊर्ध्व में रहना चाहता हैं, वह हमारी भांति वायु सेवन करके अपना विचरण करना नहीं चाहता। क्योंकि वह उस विद्या को जानता ही नहीं, वेद का अध्ययन नहीं करता। वे तो कहते हैं कि हम तो भगवान् हैं। 'भगवान्' की पूजा करो। मानो वे उस 'सर्वत्र रहने वाले भगवान्' को स्वीकार नहीं कर पाते इसीलिए

यह अज्ञान आ गया है। यह क्रियात्मक जीवन न रह करके राजा उनका आदर नहीं करता। राजा उनका कुछ सूक्ष्म आदर करता है तो उनको अभिमान आ जाता है कि राजा भी मेरी आज्ञा का पालन करता है। अरे भोले साधुओ ! अरे राजा ! तुम्हारा राज्य साधु से होता है, साधु राज से नहीं होता। क्योंकि राज्य को साधु ऊंचा बना देता है। परन्तु राजा राष्ट्र को ऊंचा कदापि नहीं बना सकता। इसीलिए मैं उच्चारण कर रहा हूँ क्योंकि वह राजा साधु की ही प्रकृति के होते हैं जो स्वयं कला कौशल करते हैं।

आज का विचार क्या ? भस्मासुर की चर्चा कर रहा था। ऐसा जो शिव है जो मानो 'ब्रह्मे वृत्तः परमात्मन् ब्रह्मे लोकाः', आज का विज्ञान कहता है कि परमात्मा नहीं हैं। क्योंकि परमात्मा के बिखरे हुए कंगन रूपी कणों को एकत्रित करके वैज्ञानिक बन रहा है और फिर कहता है कि परमात्मा है ही नहीं। तो यह मैं कैसा आश्चर्य दृष्टिपात् करता हूँ ! अरे ! वह कंगन जिससे तुमने निर्माण किया है, वे प्रभु के ही बिखेरे हुए कण हैं; वे कण तो प्रकृति के ही हैं। उसके पश्चात् भी तुम यह कहते हो कि परमात्मा है ही नहीं। अरे ! परमात्मा को तो तब जाना जाता है जब आत्मा के चक्षु स्पष्ट हो जाते हैं, प्रकाश में आ जाते हैं। अरे ! अब तुम इन नेत्रों से यह दृष्टिपात् करना चाहते हो तो यह दृष्टिपात् नहीं होगा। अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा। उच्चारण मैं यह कर रहा था, मैंने अपना सूक्ष्म सा अपना विचार दिया है और वह विचार ऐसा है जिन विचारों से हमें आश्चर्य हो रहा है, मैं आश्चर्य चकित हो रहा हूँ। मैं आज के यजमान को अपने शुभ हृदय से यह उच्चारण करने आया हूँ कि इनका आयु दीर्घ बने, सौभाग्य अखण्ड बना रहे जिससे शुभ कार्यों में प्रवृत्ति बनी रहे। हे ब्राह्मण ! तेरे कण्ठ में जो हृदयग्राही वाणी है वह पवित्र बनती हुई 'शरदः शतम् शरदः शतात्' मानो सहस्त्रों वर्षो की आयु नहीं और भी विशेष आयु

हो, जिससे तुम यौगिकवाद को प्राप्त होते हुए अपने मानव जीवन को सुन्दर बना सको। ऐसा मेरा सदैव वाक्य रहता है, अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा।

गुरु जी द्वारा उपसंहार—(हास्य)... मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने कुछ विचार प्रकट किए। इनके विचार बड़े महान् और विनोदमय विचार थे, विनोदमय क्या, मुझे ऐसा प्रतीत होता रहता है, इनके हृदय में विडम्बना रहती है। वह जो विडम्बनित हृदय है जिससे विडम्बना रहती है वह इन्हें मानो समाज को आभा से युक्त देखना चाहता है। 'ब्रह्म-लोकः', कोई वाक्य नहीं। यह तो समाज का परिवर्तन है, होता रहता है। समाज में, किसी काल में रूढ़ियां भी हैं, किसी काल में महत्ता भी है, यह तो परम्परा से प्रभु का चक्र है, चल रहा है, चलता रहेगा। जैसा मेरे पुत्र ने कहा है उसके आधार पर ही यजमान तुम्हारा सौभग्य अखण्ड बना रहे, जीवन में ऐसे महान् कार्य और अपने में अभिमान की प्रतिभा को समाप्त करके नम्र बनते हुए जीवन को ऊंचा बनाते चले जाओ, ऐसी मेरी सदैव कामना महानन्द जी के साथ रहती है! अब हमारा यह विचार समाप्त। अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

चितसौना
२४ मई, १६७६

वशिष्ठाश्रम में याग चर्चा

३० दिसम्बर, १६८५
ग्राम जागतिया
समय साय : ४.३० बजे

देखो मुनिवरो !

आज हम तुम्हारें समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणमान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया; हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद वाणी में, उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वह परमपिता परमात्मा रणी माने गये हैं। जो भी मानव उसका वरण कर लेता है, प्रायः वह उसी को प्राप्त हो जाता है। इसीलिये हमें परमपिता परमात्मा के गुणों का गुणवादन करना चाहिये क्योंकि अग्नि के समीप उसका ताप और तेज मानव को अपनी प्रतिभा का वर्णन करा देता है।

ब्रह्माग्नि

परन्तु जहाँ यह सम्बन्ध ब्रह्म-अग्नि का आता है। ब्रह्म-अग्नि किसे

कहते हैं ? ब्रह्म-अग्नि उसे कहते हैं, जो इस ब्रह्माण्ड को प्रकाशित कर रही है। वह एक सूत्र कहलाती है। और यह जो ब्रह्माण्ड है। नाना नीहारिकाओं वाला जो जगत है। इस संसार का एक सूत्र बना हुआ है। जिस प्रकार माता के गर्भ स्थल में जब शिशु विद्यमान होता है। तो माता उसका सूत्र बनकर के रहती है। उसी में वह सूत्रित रहता है। और जो निर्माण वेत्ता है। जो निर्माण कर हा है। मेरी भोली माँ उससे प्रायः वञ्चित रहती हैं यह नहीं जानती माता कि कौन निर्माण कर रहा है ? कौन-सी वस्तु का निर्माण हो रहा है ? तो इससे हमें यह सिद्ध होता है, कि वह जो मेरा देव परमपिता परमात्मा जो विश्व कर्मा है, जो विश्व को धारण कर रहा है, वही माता के गर्भ स्थल में हम जैसे शिशुओं का प्राण निर्माण करता रहता है। हे भोली माँ तुझे ज्ञान नहीं कि तेरे गर्भ में कौन निर्माण वेत्ता है। एक एक अणु और परमाणु को सुगठित करने वाला, उसे ब्रह्म अग्नि में पिरो देता है। उसे अपने में पिरो लेता है।

गर्भस्थ शिशु का विज्ञान

कैसा मेरे प्यारे प्रभु का यह विज्ञान हूँ। जब माता के गर्भ स्थल में एक बिन्दु का प्रवेश होते ही मानो सर्वत्र देवता उस बिन्दु मयी, आपोमयी ज्योति की रक्षा करने के लिये तत्पर हो जाते हैं। यह पृथ्वी गुरुत्व देने लगती है। और जल आपो मयी शीतल बनाने लगता है। अग्नि उसे ऊष्ण बनाने लगती है। और वायु उसे प्राण देता है। सूर्य उसे तेजो मयी बना देता है। और चन्द्रमा अमृत को बहाने लगता है। और यह जो लोक लोकान्तरों की माला है नाना तारा मण्डलों की माला बन करके उस बालक के लघु मास्तिष्क में परिणित हो जाती है। वाह रे मेरे प्रभु ! तू कितना विज्ञानमयी है। आज तेरे विज्ञान की कोई सीमा नहीं। सीमा में तेरे विज्ञान को नहीं ला सकते। सृष्टि के

प्रारम्भ से लेकर के वर्तमान के काल तक नाना वैज्ञानिक हुए हैं। परन्तु कोई वैज्ञानिक ऐसा नहीं हुआ जो उस महामना देव के विज्ञान को सीमाबद्ध कर सके। उसका ज्ञान और विज्ञान नितान्त रहता है। तो मेरे प्यारे विचार आता है हे ममत्व! हे तेजोमयी! तू प्रायः हमें धारण करने वाली है। वेद उस समय माता को वसुन्धरा के रूप में परिणित कर रहा है। परन्तु आज मैं प्रभु के विज्ञान में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ।

भगवान राम का विद्याध्ययन

इससे पूर्व काल में हम भगवान राम की कुछ चर्चाएँ कर रहे थे भगवान राम की वह विशेषताएँ जो प्रायः उनके बाल्य काल में मानो जो मनोनीतिता में प्रायः प्रकट होती रहती थी। विद्यालय में माता ब्रह्मचारी को महान बनाने का उपदेश दे रही है। नाना प्रकार का क्रियाकलाप है, उस क्रिया कलाप में उसको परिणित कर रही हैं। जब भगवान राम और लक्ष्मण और गार्गपथ्य ब्रह्मचारी और भी नाना सङ्ग में ब्रह्मचारी ये जब वे सर्वत्र ऋषि मुनियों का भ्रमण करके, माता अरुन्धती के समीप आ पहुँचे माता अरुन्धती ने कहा "ब्रह्म वाचो देवाः ब्रह्मवरुण" हे ब्रह्मचारी! तुमने कहाँ कहाँ भ्रमण किया तो एक ही कण्ठ से चारों ब्रह्मचारियों ने कहा कि हम राजाओं के यहाँ भी पहुँचे और ऋषि मुनियों के समीप हम विज्ञान की धाराओं में भी प्रायः रमण करते रहते हैं। हमें बहुत सा अनुभव डुआ है। जीवन की धाराओं का अनुभव होना ही हमारे जीवन की एक सार्थकता कहलाती है। वह सायङ्काल का समय था रात्रि के काल में बेटा नौदा में से कुछ मन्त्रों का उच्चारण कराते हुए अरुन्धती अपने कक्ष में और वशिष्ठ मुनि महाराज अपने कक्ष में विद्यमान हो गये। अगला दिवस जो प्रातः काल का आया। अपनी क्रियाओं से ब्रह्मचारी निवृत्त हो करके माता अरुन्धती वशिष्ठ

और महर्षि विश्वामित्र विद्यालय में विद्यमान हैं। माता अरून्धती ने ब्रह्मचारियों की पड़िक्त लगायी "यागाम् ब्रह्म वाचो देवाः" और याग करने के लिये तत्पर हो गये।

परन्तु जैसे उन्होंने सन्धि के काल में जैसे प्रातःकाल और रात्रि की दोनों की सन्धि होती है। ऐसी ही ब्रह्मचारियों ने अपने कक्ष में उस सन्धि काल में सन्ध्या उपासना करने के पश्चात् अग्नि के समीप जा करके अग्नि होत्र करने लगे। एक ब्रह्मचारी यजमान बन गया और होता उद्गाता अध्यर्वु बन गये। याग प्रारम्भ होने लगा माता अरून्धती की अध्यक्षता में वशिष्ठ मुनि के गुरुत्व में, विश्वामित्र भी उस पड़िक्त में विद्यमान हैं। विचार चल रहा है। याग के पश्चात् मेरे पुत्रो ब्रह्मचारियों का कुछ विचार होता है। हमारे यहाँ एक परम्परा मानी गयी है। ब्रह्मचारी प्रातःकालीन अग्नि का चयन करके आचार्य से कुछ प्रश्न करता है। और प्रश्नों का उत्तर आचार्य जन देते हैं। जैसे माता अपने पुत्र को लोरियों का पान कराती हुई उसके श्रोतों में कुछ न कुछ उच्चारण करती रहती है। अपने उदगार देती रहती है। बालक का कण–कण पवित्र बनता रहता है। माता के उन उद्गारों से बाल्य की प्रतिभा का जन्म होता है। परन्तु विद्यालय में क्रियात्मक में प्रवेश वृतित हो जाता है।

वाजपेयी याग

राम, लक्ष्मण, गारपथ्य, सुकेता, श्वेतकेतु, ब्रह्मचारी कबन्धि भी शिक्षा अध्ययन करते थे। मेरे पुत्रो ब्रह्मचारी कवन्धि भगवान राम, लक्ष्मण और इन चारों ब्रह्मचारियों ने उपस्थित होकर के यह कहा कि भगवान यह वाजपेयी याग किसे कहते है ? क्योंकि नाना प्रकार के यागो का जहाँ वर्णन आता है, वहाँ वैदिक साहित्य में वाजपेयी याग का भी वर्णन

आता है। तो भगवान राम के शब्दों को पान करने वाले ऋषिवर वशिष्ठ ने कहा हे राम ! तुम वाजपेयी याग को क्यों जानना चाहते हो? उन्होंने कहा प्रभु ! हम इससे पूर्व जब रात्रि समाप्त हुई तो नौदा में से कुछ मन्त्रों का अध्ययन कर रहे थे और मन्त्र यह कह रहे थे "वाचन्नमः वाचो वृतम् यागाः यागाम् भवत्ति देवाः" यह नौदा में से एक मन्त्र है। और यह मन्त्र यह कहता है। कि राजा और ब्रह्मचारियों को वाजपेयी याग करना चाहिये तो भगवान ! यह वाजपेयी याग क्या है। तो महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि याग तो कहते है अग्निहोत्र को, याग कहते हैं शुभ कर्म को, परन्तु रहा वाजपेयी याग। प्रजा के सुख के लिये, सुखद अनुभव करने के लिये "अभ्युदानम् ब्रहे" सुखी और आनन्दवत् बनाने के लिये याग करते रहते हैं। इसीलिये वाजपेयी याग का अभिप्राय "वाचा वाचन्नमः वाचन्नमम् ब्रह्म वाचा" जिससे वाणी पवित्र हो जाये उसको हमारे यहाँ वाच कहते हैं। जिससे हमारे समय का उपयोग हो जाये और हम याग करते हुए अग्नि का चयन करते रहें। अपनी वाणी को पवित्र बनाते रहें। क्योंकि वाणी को पवित्र बनाना राष्ट्र और समाज के लिये बड़ा महान महत्व का माना गया है। मेरी प्यारी माता को प्रायः वाजपेयी याग करना चाहिये वह बालक को जब लोरियों का पान कराती हो तो वह सत्यवादी ब्रह्मचारी को बनाना है। यदि माता सत्यवादी पुत्र को नहीं बना सकती तो मानो देखो यह माता की सुक्ष्मता होती है। यह उसकी धृष्टता का द्योतक है।

बलि की व्याख्या : बलि का अभिप्राय है पुरुषार्थ करना

परन्तु महर्षि वशिष्ठ ने कहा राम ! मेरे विचार में एक पक्ष तो यह कहता है वाजपेयी याग का, और द्वितीय जो पक्ष है, वाजपेयी याग का, यह कहता है कि मेघों से हम जब याग करते है, तो याग को मानो देखो हिरणाक्ष ले जाता है। और हिरणाक्ष उस याग को, मेघ

मण्डल को परिणित करा देता है। या वृतासुर को उच्चारण कर दीजिये। वह वृत्रासुर में चला जाता है। और वृत्रासुर उसकी धीमी धीमी याग की वृष्टि कर देता हैं सोम की वृष्टि कर देता है और वह जो सोम की वृष्टि है, वहाँ, गऊ के बछड़े और बैल की बलि का वर्णन आता है। यह वर्णन शैली हमारे यहाँ परम्परागतों से आयी। जहाँ बलि का वर्णन है, वहाँ बलि के बहुत से अभिप्राय माने गये है मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में बलि के नाना रूप नाना गुरुत्व प्रकट किये थे। बलि का अभिप्राय यह है कि जो सोम की वृष्टि हुई है, उसको हम परिश्रम से, अपने पुरुषार्थ से उस सोम का सदुपयोग करते हैं। और वह सोम का जब सदुपयोग हो जायेगा तो मानो देखो यहाँ बलि का वर्णन है। बलि का अभिप्राय केवल है, पुरुषार्थ करना है। पुरुषार्थ का नामो करण बलि कहा जाता है।

महर्षि वशिष्ठ द्वारा याग की महिमा की विवेचना

बहुत पुरातन काल हुआ मेरे पुत्र महानन्द जी ने बहुत सी वार्ताएँ मुझे प्रकट करायी आज मुझे उन वाक्यों में तो जाना नहीं है। परन्तु जो त्रेता के काल में महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज, माता अरुन्धति प्रायः यह विवेचना करती रहती। और विवेचना का अभिप्राय केवल यह बना, सोम कहते है वृष्टि को। याग कहते हैं, प्रतिका को। जो हम याग करते हैं, उसका सुगन्ध रूप बन करके ही आता है। प्रजन्य में उससे वृष्टि होती है। और वह वृष्टि ही नाना प्रकार के व्यञ्जनों को जन्म देती है। नाना वनस्पतियाँ उसी से पनप रही है। तो विचार विनिमय क्या बेटा आख्यायिकाएँ हैं, यह विचार है, याग का कर्म है। याग भी होना चाहिये और यह राजा और राष्ट्र का कर्तव्य है। ब्राह्मण, ऊँचे पुरुषों का यह कर्त्तव्य है कि इस प्रकार के यागों का चयन करें और साधारण समाज में इस प्रकार के उद्योगों का प्रसार करता चला जाये

जिससे राष्ट्र और समाज में एक आनन्दवत छा जाये। कर्तव्य का पालन करता रहे प्राणी। जब तक कर्तव्यवादी नहीं बनेगा तब तक जीवन नहीं बनता। इसी प्रकार नाना प्रकार के कर्मों की जो विचित्रतायें है वह बड़ी महान और वह गहन हमारे यहाँ साहित्यों में बेटा सिद्ध हुई और यह आया है कि उनको हमें विचार विनिमय करना है। मेरे पुत्रो जब वशिष्ठ मुनि महाराज ने याग की जो विवेचना की तो मानो देखो उसमें दोनों के याग होने चाहिये "यज्ञम् भवितः देवाः" वे यज्ञशालाओं में विद्यमान होकर के यजमान पत्नि से कहता है, देवी ! आओ हम अपनी अन्तर्भावनाओं को द्यौ-लोक में पहुँचाना चाहते हैं। महर्षि वैशम्पायन की चर्चा भी यह कहती है। महर्षि वैशम्पायन ने इस वेद मन्त्र का अध्ययन किया था कि यजमान का चित्र बन करके द्यौ-लोक में जाता है। यजमान कहता है, "जिज्ञाम" आओ हम देव–याग कर रहे है। हम वाजपेयी याग करते हुये अपनी अन्तर्भावनाओं को दिव्य लोक में पहुँचाना चाहते हैं। हम दिव्यता में उसको परिणित करना चाहते हैं। यजमान का अन्तर्हृदय जब तक पवित्र नहीं होता मानो वह पवित्रता ही तो वायु मण्डल का निर्माण और याग की प्रतिभा को जन्म देती है। वही तो गृह को ऊँचा बनाती है। गृह में शुद्ध पवित्रता के परमाणु जब वेद मन्त्र की धारा में गति करते हैं, वह वायु मण्डल में प्रवेश करते हुए यजमान के हृदय का शोधन करते रहते हैं। महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज इस प्रकार की विवेचना करते रहते है। विवेचनाएँ समाप्त हो गयीं और देखो ब्रह्मचारी अपने-अपने कक्ष में जा पहुँचे। ब्रह्मचारी जब अपने-अपने कक्ष में जा पहुँचे। तो मानो सामकाल के समय एक ब्रह्मचारियों का समूह विद्यमान हुआ।

भगवान राम द्वारा महाराजा दलीप का वर्णन

ब्रह्मचारी ने कहा मानो यज्ञदत्त ने कहा है हे साधो ! हे भरत !

आज आचार्य ने हमें जो विवेच नाएँ प्रकट की हैं। यह तो मैंने कई काल में योगियों से चर्चाएँ की थी। रे पिता योगेश्वर थे और वे इन्हीं धाराओं को बुद्ध मण्डल में क्या शनि में ले जाते थे और शनि प्राणियों का यज्ञ के द्वारा दर्शन करते थे। ब्र. गारपथ्य ने कहा कि मेरे जो पिता थे जब मैं माता की लोरियों का पान करता रहा, पिता अङ्ग-सङ्ग रहते, वह शिक्षा देते रहते। तो मेरे पिता, वह अपने पूर्वजों के जो शब्दों के साथ चित्र गतियाँ करते उनको दिग्दर्शन करते रहते थे। बड़ा विचित्र बेटा ब्रह्मचारियों का समूह था, उसमें अपने-अपने अनुभव की और जो श्रवण की हुई चर्चा थी, उसको वह चर्चा में ला रहे थे। भगवान राम ने कहा कि मैंने अपने महापिता राजा दलीप की गाथा को श्रवण किया। मेरे महा पिता का नाम दलीप था, वशिष्ट ऋषि मुनियों के कथनानुसार उन्होंने राज्य का त्याग कर दिया और नन्दनी की सेवा करने लगे। नन्दनी के विचार और अपने विचारों का तारतम्य मिलाते। मानो सिंहराज आता तो उसके विचारों में अपने विचारों की झड़ी लगाते रहते थे। हमारे पूर्वज हमारे महापिता कितने वैज्ञानिक और कितने आत्मीयता मे रत्त रहे। महाराजा दलीप के जीवन में यह गाथा आती है। भगवान राम ने कहा कि जब नन्दनी हिमालय की कन्दराओं में पहुँची तो वहाँ झरना झर रहा था, जल का स्रोत बह रहा था, वहाँ नन्दनी जल का पान करने लगी। हमारे महापिता उस झरती हुई जल धारा को दृष्टिपात करने लगे। इतने में सिंहराज ने आकर के नन्दनी पर आक्रमण किया महाराजा दलीप ने दृष्टिपात किया यह क्या हो रहा है। पूर्वज ने कहा हे सिंहराज ! यह नन्दनी मेरी पूज्य है। इससे पूर्व तू मेरे प्राणों को हनन कर सकता है। नन्दनी के प्राण उसके पश्चात् हनन हो सकते हैं। बेटा देखो वह सिंहराज मानो चिन्तन में लग गया लेखनीय बद्ध कहती है। दलीप जी के विचार कहते हैं। कि उन्होंने "लेखनम् ब्रह्म वाचाः" वह चिन्तन में लग गये और विचार आया कि

दलीप जी को मैंने आहार कर लिया तो राष्ट्र का और हमारा कौन रक्षक रहेगा ''ओ हो ! रक्षाम् भविते देवाः'' पहले ऋषि परम्परा के काल में पुत्रो सिंहराज की रक्षा करने वाला राजा है। प्राणी मात्र की रक्षा करने वाला राजा है। नन्दनी को त्याग दिया और नन्दनी को त्याग करके उसके भाव महाराज दलीप जानते थे उनकी तपस्या पूर्ण हो गयी १२ वर्ष तक तप किया वशिष्ठ ने याग किया श्रृंड्गी के द्वारा याग कराया यहाँ राम का जन्म हुआ। राम अपने ब्रह्मचारियों में विद्यमान हो करके अपने पूर्वजों की गाथा का वर्णन कर रहे थे। देखो इसको हम धेनु याग कहते है। धेनु याग राजा को करने चाहिए। धेनु याग से समाज ऊँचा बनता है। तो मेरे पुत्रो देखो उसी समय ब्रह्मचारियों की सभा का विसर्जन हो गया।

समान शिक्षा

राजा को यदि अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना है। राम की प्रतिभा को लाना है। तो मानो एक वञ्चक बनों में रहने वाला, उदर की पूर्ति करने वाला उसका ब्रह्मचारी, उसका बाल्य और एक राजा का बाल्य दोनों जब एक ही पड्क्ति में भोग प्राप्त करने लगते हैं तो राजा का राष्ट्र पवित्र बन जाता है। यह शिक्षा प्रणाली पवित्र बना देती है। और यदि राजा का पुत्र ब्रह्मचांरी कुछ पानकर रहा है। अध्ययन की प्रति क्रिया कुछ कह रही है। तो राजा का राष्ट्र पवित्र नहीं बनेगा। उसमें महानता नहीं आयेगी क्योंकि ब्रह्मचारी सभी एक सूत्र के होते हैं।' उनका धीमा धीमा विकास धीमी धीमी प्रति क्रियायें बनती रहती है। प्रत्येक मानव को अपने जीवन में महान बनने के लिये नाना प्रकार के गम्भीरतम रहस्यों को उद्धृत करना है। मानो उसको उद्गम्यता में परिणित करना है। **एक शूद्र के कुल में एक ब्रह्मचारी का जन्म हुआ एक राजा के कुल में जन्म हुआ आचार्य दोनों को शिक्षा दे रहा**

है। एकोमयी शिक्षा, अन्न भी उसी प्रकार का है। तो राष्ट्र समाज पवित्र बनेगा, विज्ञान में प्रतिभा और महानता का जन्म होता रहेगा।

तो मैं यह उच्चारण कर रहा हूँ। कि वशिष्ठ मुनि महाराज के यहाँ ब्रह्मचारी भिन्न-भिन्न प्रकार का अध्ययन करते रहे ज्ञान और विज्ञान की उड़ान उड़ना और क्रियात्मक अपने जीवन को बनाना प्रातःकालीन सूर्य उदय होने से पूर्व मानो अपनी शारीरिक उन्नति करना बौद्धिक उन्नति हो गयी है और शारीरिक उन्नति हो गयी तो सामाजिक उन्नति स्वतः बन गयी उसमें स्वतः महानता आ गयी। मेरे प्यारे इसी प्रकार जब बौद्धिक शारीरिक और सामाजिक और आत्मिक जब ऊँचे बन गये तब आत्मिक उन्नति स्वतः हो जायेगी। जब आत्मा की उन्नति हो तो हम सदैव सत्यवादी बनेंगे गृह को ऊँचा बनायेगे और महानता की प्रतिभा को ला सकेंगे। तो पुत्रो! आज का विचार, मैं व्याख्याता नहीं हूँ। केवल तुम्हें परिचय देने के लिये आया हूँ वह परिचय क्या है। कि त्रेता काल का यह परिचय है बेटा, विद्यालय में वशिष्ठ माता अरून्धती अपने में महान उपदेश देकर के वशिष्ठ नाना प्रकार की त्रुटियों को स्पष्टीकरण में लाते रहते है। हमारे यहाँ यागों में हिंसा का चलन नहीं है। बलि का कोई चलन नहीं है। केवल यहाँ बलि पुरुषार्थ को माना है। मेरे पुत्रो मुझे महानन्द जी ने एक समय प्रकट कराया कि महाभारत काल के पश्चात् यागों में कुरीतियाँ आई, कल मेरे प्यारे महानन्द जी कुरीतियों को कुछ प्रकट उन आज का विचार तो केवल यह है। कि हमारा जीवन एक महान और पवित्रता में परिणित हो याग का अभिप्राय है कि हमारा आत्मा उन्नतशील हो जाये याग का अभिप्राय है कि गृह में पवित्रता आजाये। हमारे हिंसा के भाव कर्म वचन में नहीं रहे। हम कर्म वचन से महान बनकर के सागर से पार हो जायें यह है बेटा आज का वाक्य समय मिलेगा तो मैं शेष चर्चाएँ कल प्रकट करूँगा। अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

"ॐ देवाः यं सर्वानि आप्याम् लोकम्।"

●●●

यज्ञमय उत्थान

देखो, मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुण-गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद-वाणी में उस मेरे देव, परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है, क्योंकि उसी की प्रतिभा इस प्रकृति के कण-कण में ओत-प्रोत है, मानो उसमें आभायित हो रही है। और, जितना भी यह जड़-जगत्, चैतन्य-जगत् हमें दृष्टिपात् आ रहा है, उस सर्वत्र का दृष्टा वह मेरा चैतन्य देव ही माना गया है, क्योंकि वह संसार को क्रियाशील बना रहा है। प्रत्येक परमाणु अपनी-अपनी आभा में उसी चेतना के संसर्ग में रह करके गतिशील होता हुआ दृष्टिपात् आ रहा है।

आज, हम जब इस संसार की गति को दृष्टिपात् करने लगते हैं तो सर्वत्र ब्रह्माण्ड एक आभा में, एक माला के सदृश हमें दृष्टिपात् होता है। जिस प्रकार नाना प्रकार के मनके जब सूत्र में पिरोए जाते हैं तो माला के रूप में दृष्टिपात् आते हैं इसी प्रकार यह जो विभक्त क्रिया इस संसार में हो रही है, जो भिन्नता में मानव को दृष्टिपात् होती है, जब मानव ज्ञान और विवेक के क्षेत्र में प्रवेश करता है, तो मुनिवरो! यह संसार एक प्रकार की माला के रूप में दृष्टिपात् आने लगता है, क्योंकि यह संसार एक सूत्र में पिरोया हुआ है, एक चेतना में पियोया हुआ है।

आज का हमारा वेद-मन्त्र यह क्या कह रहा था? वेद-मन्त्र यह कह रहा था कि हे मानव ! तू अपने जीवन को याज्ञिक बनाने का

प्रयास कर, क्योंकि तेरा जीवन वास्तव में यज्ञमय होना चाहिए। **प्रत्येक मानव को अपने जीवन को यज्ञमय बनाने की उत्कट इच्छा रहती है कि मेरा जीवन महान बने, मेरे जीवन में किसी भी प्रकार की त्रुटि नहीं होनी चाहिए। परन्तु जब वह संसार के क्षेत्रों में आता है, उसकी प्रतिक्रियाएं भिन्न-भिन्न रूपों में परिवर्तित होती रहती हैं।** परन्तु आज का विचार क्या, कि प्रत्येक मानव अपने जीवन को यज्ञमय बनाना चाहता है।

यज्ञ-मन्त्रों पर अनुसन्धान

आज, मुनिवरो ! मैं तुम्हें एक ऐसे ऋषि के द्वार पर ले जाना चाहता हूँ जहाँ ऋषि-मुनि विद्यमान हो करके नाना प्रकार के यागों की चर्चाएं करते रहे हैं, नाना प्रकार के वेद की आभा के ऊपर, नाना प्रकार के जो याग होते हैं, उसके ऊपर प्रायः अनुसन्धान करते रहे हैं। वेद का मन्त्र यह कह रहा था 'यज्ञमानश्चयवृत्तं देवः विमानं वृत्ति कृतलोकः वेतु वर्ण वायु वृत्तं, लोकः द्यौ देवः'। मेरे पुत्रो ! यह वेद का मन्त्र मानव को बाध्य कर रहा है, हे मानव ! तू याज्ञिक बन। हे यजमान ! तेरा जो विमान है यह जो यज्ञशाला है, यह तेरा विमान बन करके अन्तरिक्ष में, द्यौ-लोकों में गति करता है। ऐसा वेद का आशय कहता है।

एक समय मध्य रात्रि का काल था। मध्य रात्रि के काल में, बेटा ! वैशम्पायन ऋषि महाराज अपने आसन पर विद्यमान हैं। उन्हें वैशम्पायन अत्रि कहते थे, क्योंकि वे आत्रि गोत्र में थे। तो मेरे प्यारे ! वैशम्पायन जब यह विचारने लगे कि वेद का मन्त्र यह कहता है, आगे नाना मन्त्र इस प्रकार के आ रहे थे, क्योंकि वह 'याग-सूत्र' कहलाता था। याग जो सूत्र था वह मानव को विचार-विनिमय करने के लिए

बाध्य कर रहा था कि मानव का चित्र कैसे जाता है? यजमान का चित्र कैसे बन करके चलेगा ? तो मुनिवरो ! देखो, इसके ऊपर वह वेद-मन्त्र था और ऋषि वैशम्पायन अपने आश्रम में विद्यमान हो करके चिन्तन करने लगे, मनन करने लगे, ऊँची उड़ान उड़ने लगे। जब वह ऊँची उड़ान उड़ने लगे तो विचार आया कि विमान कैसे बनेगा? मेरे प्यारे ! प्रातः काल आ गया, मध्यरात्रि से प्रातः काल तक वह चिन्तन करते रहे। इतने में महर्षि विभाण्डक मुनि आ पहुँचे। महर्षि विभाण्डक मुनि कहते है—कहो, वैशम्पायन जी ! आज तुम्हारा चित्त मुझे प्रसन्न नहीं दृष्टिपात् हो रहा है ! वैशम्पायन ऋषि बोले कि महाराज ! मेरे समीप एक वेद-मन्त्र आया है और उसके संसर्ग में नाना मन्त्र हैं, परन्तु वह मन्त्र अपनी यही एक आभा प्रकट कर रहे हैं कि यज्ञशाला में जो यजमान है, उसका विमान बन करके अन्तरिक्ष को जाता है। वह कैसा याग है, जिस याग में यजमान विराजमान हो करके उसका विमान बन जाता है और वह द्यौ-लोकों को प्राप्त होता हुआ अन्तरिक्ष लोकों को जाता है ? क्या इसको आप हमें निर्णय करा सकेंगे ? महर्षि विभाण्डक मुनि कहते हैं कि निर्णय क्या ? इसके ऊपर चिन्तन किया जाए। इसको क्रिया में लाना है तो तुम एक याग की रचना करो और जब याग की रचना होगी तो इन वाक्यों का स्पष्टीकरण हो जाएगा।

ऋषियों की याग-योजना

मेरे प्यारे ! वैशम्पायन, महर्षि विभाण्डक, महर्षि शमीक इत्यादि ऋषि विद्यमान थे, सर्वत्र ने यही विचारा कि हम याग की रचना करें और याग की रचना करके हम उसके ऊपर अनुसंधान करें और उसके संसर्ग में जो भी वाक्य आएगा अथवा जो भी प्रतिभा हमें दृष्टिपात् होगी, उसी के ऊपर अपने विचारों को निष्ठावान बना सकेंगे। मेरे पुत्रो ! देखो, यही विचार होता रहा। मुनिवरो ! अन्त में यह चिन्तन

किया गया कि चलो राम की अयोध्या में चलेंगे और राम की अयोध्या में जा करके एक याग कराएंगे, क्योंकि याग के द्वारा ही हम इसको जान सकेंगे। तो मेरे प्यारे ! देखो, महर्षि वैशम्पायन, महर्षि विभाण्डक, महर्षि शमीक, महर्षि पनपेतु, महर्षि सोमकेतु इत्यादि ऋषि आश्रम से प्रस्थान करने लगे।

चित्त के दो रूप

जब कोई निर्णय नहीं हुआ दार्शनिक रूपों में तो निर्णय आता है कि मानव के विचार कहीं के कहीं गति करते हैं। वे स्थिर भी हो जाते हैं। मन और आत्मा से जो भी कर्म होता है वह चित्त में प्रवेश कर जाता है। चित्त भी दो ही रूपों में रहता है—एक विशेष चित्त होता है, एक सार्व-भौम चित्त का मण्डल होता है। वह जो चित्त का मण्डल है, वह मानव के द्वारा होता है और एक चित्त का मण्डल द्यौ-मण्डल के द्वारा रहता है। वह समष्टि-चित्त कहलाता है। समष्टि-चित्त में ही सूक्ष्म-शरीर रमण करता रहता है। इस सम्बन्ध में ऋषि-मुनि उड़ान उड़ते रहे। हो सकता है कि वेद का मन्त्र यही कह रहा है कि विमान बनता है, हो सकता है शब्दों का विमान बनता है, ऐसा ऋषि अपने आँगन में निर्णय कर रहे थे, परन्तु उनके विचारों में यह आया कि हम इसको क्रियात्मक दृष्टिपात् करेंगे।

अयोध्या में यज्ञमय कर्त्तव्य-पालन

मेरे प्यारे ! नाना ऋषियों ने यहाँ से, आश्रमों से प्रस्थान किया और भ्रमण करते हुए वह सायंकाल क्या, रात्रिकाल के आनन्द मनाते हुए ऋषिवर प्रातःकाल होते ही अयोध्या में आ पहुँचे। **तो भगवान राम के यहाँ अयोध्या में यह नियम था कि प्रत्येक प्राणी उनके राष्ट्र में**

याज्ञिक था, यज्ञमयी जीवन को बनाने वाला था, क्योंकि राम का यह उपदेश रहता था अपनी प्रजा को कि किसी प्रकार की भी कर्त्तव्य-विहीनता नहीं होनी चाहिए। कर्त्तव्य का पालन होना चाहिए। कर्त्तव्य के पालन में सबसे प्रथम याग हो, क्योंकि जिससे प्रत्येक गृह सुगन्धित हो जाए और उसके ऊपर मानव के जीवन का अध्ययन होना चाहिए। मानव के जीवन में भी सुगन्धि होनी चाहिए।

मेरे पुत्रो ! मानव के जीवन में नाना प्रकार की सुगन्धि होती है। परन्तु एक सुगन्धि मानव के जीवन में चरित्र की होती है। वाणी की सुगन्धि होती है, चक्षु की सुगन्धि होती है। परन्तु ज्ञान और विज्ञान की भी एक सुगन्धि होती है। मेरे पुत्रो ! हमारे यहाँ यह माना गया है कि चारित्रिक जो निर्माण है अथवा चारित्रिक जो सुगन्धि है, वह अपनी तरंगों से संसार के ज्ञान और विज्ञान को एकत्रित कर सकती है। तो सुगन्धि को लाना हमारा कर्त्तव्य है। हमें अपने समाज में, अपने राष्ट्र में, अपनी मानवता में चारित्रिक निर्माण करना चाहिए। उसका निर्माण होता रहे।

बेटा ! मुझे वह काल स्मरण है जब भगवान राम के यहाँ जब राष्ट्र की स्थापना हुई, लंका को विजय करने के पश्चात्, तो उन्होंने अपना राष्ट्रीय नियम बनाया, एक कर्म बनाया जो उनके रघुवंश में नाना प्रणालियों में, नाना प्रकार की नियमावली में भी रहा। मध्य काल में वह कुछ शान्तना को प्राप्त हो गई। परन्तु, भगवान राम ने महर्षि वशिष्ठ इत्यादियों ने, बेटा ! उन नियमावलियों को पुनः से धारण कराने का प्रयास किया। तो मुनिवरो ! ऐसा स्मरण है कि वह नित्यप्रति चारों विधाता अपनी यज्ञशाला में याग करते रहते थे। जब चारों विधाता अपनी यज्ञशाला में याग कर रहे थे, तो ऋषियों का आगमन हुआ। ऋषि अपने-अपने उचित आसनों पर विद्यमान हो गये। परन्तु राम ने

जब याग समाप्त किया, याग समाप्त करने के पश्चात् नाना मन्त्रीगण विद्यमान हैं और वह अपने मन्त्रीगणों को यह उपदेश दे रहे थे—राष्ट्र को उन्नत बनाना हमारा कर्त्तव्य है, राष्ट्र ज्ञान और विज्ञान की तरंगों को धारण करने वाला हो, प्रत्येक प्राणी का जीवन त्याग और तपस्यामयी हो। ऐसा भगवान राम का उपदेश चल रहा था।

राम के काल में वानप्रस्थ-व्यवस्था

विद्यालयों में त्यागी और तपस्वी ही पति-पत्नी शिक्षा देने में कुशलता को प्राप्त हो सकते हैं। बेटा! वह काल जब मुझे स्मरण आता है, उस काल में यह नियमावली बनी हुई थी। जब नियम बनाया गया तो सबसे प्रथम यह नियमावली थी। राष्ट्र और समाज का चारित्रिक जो निर्माण होता है, वह, मेरे प्यारे! विद्यालयों में होता है। तो इसीलिये उन्होंने विचारा कि विद्यालय पवित्र होने चाहिएं। तो उनके यहाँ नाना ऋषिवर पत्नी सहित शिक्षा प्रदान कर रहे थे। राम के काल में, मेरे प्यारे! कन्याओं का विद्यालय, ब्रह्मचारियों का विद्यालय, जो गृह को त्याग करके अपने ज्येष्ठ पुत्र को, मुनिवरो! वधु को अपना गृह का सर्वत्र त्याग करके प्रसन्नता से त्याग करने के पश्चात् जब विवेक से गृह को त्यागा जाता है, मेरे प्यारे! वह विद्यालयों में अपने अनुभव ब्रह्मचारियों को जब प्रकट कराते तो ब्रह्मचारी सुसज्जित हो जाते। ब्रह्मचारिणी मानो विद्यालय में पवित्र बन रही हैं, क्योंकि वह गृह-त्याग करके त्यागमयी और तपस्यामयी और यागमयी जीवन को बनाकर वह ब्रह्मचारिणी ब्रह्मचारियों को शिक्षा प्रदान कर रही है। क्योंकि जहाँ मन की प्रवृत्ति स्थिर रहती है, मन में एक ओज की धारा रहती है, वह ज्ञान को जितना भी दूसरों को प्रदान करता है, उसकी उतनी ही उपलब्धि होती रहती है। प्रसन्नता से विशालता आती रहती है,

ज्ञान में। विज्ञान में भी यही गति मानी गई है। जब यह नियम बनाया गया तो यह नियमावली राजा के राष्ट्र में चल रही थी!

राम-राज्य में उत्ऋण-भाव

राम प्रातःकालीन् याग करते और याग के ऊपर मानो इनका कुछ उपदेश होता और वह यह कहा करते थे—हे लक्ष्मण ! यह राष्ट्र हमारा पवित्र होना चाहिए और राष्ट्र प्रिय वही होता है, पवित्र वही होता है, जिस राजा के राष्ट्र में कोई एक-दूसरे का ऋणी न हो। अब ऋण, मुनिवरो ! यहाँ कई प्रकार के माने गये हैं। एक ऋण तो वह कहलाता है, जिसको हमारे यहाँ पितृ-ऋण कहते हैं, क्योंकि पितरों की सेवा करना, पितरों को ऊँचा बनाना, यह पितृ-याग कहलाता है। यह मानव नाना प्रकार की आभा में मानो रमण करता रहता है, परन्तु पितरों को नहीं विचार पाता, क्योंकि सबसे महान् जो हमारा पितर है, यह हमारा चैतन्य देव है। जो नाना प्रकार की वस्तुओं को प्रदान करता रहता है, जीवन को सुसज्जित बनाता रहता है। तो भगवान राम कहते हैं—हमारे राष्ट्र में कोई एक दूसरे का ऋणी नहीं होना चाहिए। प्रत्येक मानव उत्ऋण होना चाहिए, जिससे हम अपना कार्य सुचारू रूप से कर सकें और प्रजा को सुखद बना सकें। ऐसा, मुनिवरो ! भगवान राम ने कहा। उच्चारण करने के पश्चात् ब्रह्मचारी भी मौन रहते और यज्ञशाला में जो मन्त्रीगण थे वह भी मौन थे। अपना विचार प्रारम्भ हो रहा था। **राम कहते थे कि मानव का जीवन त्यागमयी होना चाहिए। जब तक त्यागमयी जीवन नहीं होगा तब तक मानव का जीवन किसी काल में भी ऊँचा नहीं बनता, किसी भी काल में महान नहीं बनता। जीवन त्यागमयी और याज्ञिक होना चाहिए।**

मेरे पुत्रो ! याग के सम्बन्ध में यह चर्चाएं हो रही थी। भगवान राम ने यह दृष्टिपात् किया कि ऋषि भी विद्यमान हैं। ये भी पूज्य होते हैं। मुनिवरो ! अपने विचारों को शान्त करके यही उन्होंने अपना विचार दिया कि जब सब प्रजा अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करे तो एक-दूसरे का मानव ऋणी रह ही नहीं सकता। ऋणी उस काल में रहता है, जब मानव नाना प्रकार की विडम्बना से युक्त होता है। नाना प्रकार की विडम्बना वाला जो मनोवृत्त कहलाता है, वह इस संसार को, गृह को या राष्ट्र को स्वर्ग नहीं बना सकता। स्वर्ग वही प्राणी ला सकता है, जिसका चारित्रिक निर्माण हो, वह महान और पवित्र हो। वही मानव, मुनिवरो ! साधना के क्षेत्र में प्रवेश कर सकता है। हमारे यहाँ याग के सम्बन्ध में नाना प्रकार की आभाएं, नाना ब्रह्मवेत्ता आए, उनका सर्वत्र एक ही मन्तव्य रहा है कि संसार को ऊँचा बनाने के लिए महान विचारों की आवश्यकता रहती है, पवित्रता की आवश्यकता रहती है। तो इसीलिए यही वेद का ऋषि कहता है, आचार्य कहता है कि आज हमें अपने मानव-जीवन को यागमय बनाना चाहिए।

अयोध्या में राम द्वारा याग योजना

तो वैशम्पायन इत्यादि ऋषि विद्यमान थे। राम ने अपना उपदेश समाप्त किया। राम ऋषियों के चरणों को स्पर्श करके बोले—कहो, भगवन् ! आज प्रातःकालीन मेरे आश्रम में आपका आगमन कैसे हुआ ? महर्षि विभाण्डक मुनि बोले कि महाराज ! हम इसलिए आये हैं कि तुम्हारे राष्ट्र में एक याग होना चाहिए। हम एक याग की कल्पना करके आये हैं। संकल्पवादी बनकर आये हैं कि राम के द्वारा एक याग हो सकता है। राम बोले—बहुत प्रिय ! यदि तुम्हारी ऐसी इच्छा है तो याग की रचना करो। याग होना चाहिए।

मेरे पुत्रो ! उस समय राम का आदेश पाते ही नाना ब्रह्मचारी, नाना ऋषिवर, ब्राह्मण-समाज याग को रचाने के लिये नाना सामग्री एकत्रित करने लगे। जब नाना सामग्री एकत्रित हो गई। तो वह याग के लिये अपने आसन से प्रस्थान करने लगे। मेरे प्यारे ! याग प्रारम्भ हो रहा है। याग में नाना ऋषिवर विद्यमान हैं। महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज की अध्यक्षता में, बेटा ! वह याग हुआ। वशिष्ठ मुनि महाराज उस याग के पुरोहित बने। अध्वर्यु, उद्‌गाता देखो, नाना ऋत्विजों के द्वारा अपने आसनों को अपनाते हुए जब याग का प्रारम्भ होने चला। प्रारम्भ होने के पश्चात् भगवान राम मौन हो गये, क्योंकि यजमान की सूक्ष्मता थी। इतने में महर्षि बाल्मीकि मुनि महाराज माता सीता के सहित भ्रमण करते यज्ञशाला में आ पहुँचे। क्योंकि हमारे यहाँ रघुवंश की परम्परागतों से एक नियमावली बनी हुई थी कि जो भी सन्तान कन्या के, राज-लक्ष्मियों के यहाँ जन्म लेती, उनका विद्यालयों में, आयुर्वेदाचार्यों के गृहों में उनकी पालना होती थी। मुझे वह काल स्मरण है, मुनिवरो ! जब सीता महर्षि वाल्मीकि-आश्रम में रहती थी, जहाँ ब्रह्मवेत्ता थे। वे आयुर्वेद के मर्म को जानने वाले थे। मेरे प्यारे ! सीता का वहाँ पर्दापण हुआ और पर्दापण होने के पश्चात् 'ब्रह्मवृत्तः देवः' यज्ञ एक महान कर्म तो होता है, विचित्र कार्य होता है परन्तु महर्षि वाल्मीकि भी सीता के सहित यज्ञ में आ पधारे और याग होने लगा।

जब याग प्रारम्भ होने लगा तो देवता प्रसन्न होने लगे, क्योंकि देवताओं को सबसे प्रथम आह्वान किया जाता है। स्वस्ति के द्वारा आह्वान करता है। मानव अपने अन्तःकरण से आह्वान करके कहता है—आओ, देवताओ ! तुम देव-पूजा करते हुए देववत् को प्राप्त हो जाओ। ऐसा वे उच्चारण कर रहे थे। आओ, मेरे प्यारे ! मैं विशेष चर्चा प्रकट तुम्हें करने नहीं आया हूँ। केवल यागों का परिचय देने के लिये आया हूँ। मेरे पुत्रो ! देखो, अब महर्षि वाल्मीकि भी विद्यमान हो गये।

और, याग प्रारम्भ का वेद-मन्त्र जब उन्होंने उच्चारण किया, द्वितीय किया, तृतीय किया इसी प्रकार छठा मन्त्र जब उच्चारण किया तो राम कहते हैं कि यहीं याग को शान्त कर दो। उन्होंने कहा—क्यों महाराज ? ऋषियों से कहा राम ने कि महाराज ! वेद-मन्त्र यह कहता है कि यह जो यज्ञशाला है, यह महापुरुषों का विमान कहलाता है और इस विमान पर विद्यमान होकर जब याग करता है तो वह देवत्त्व को प्राप्त होता है। परन्तु जब यह नाना प्रकार की उपाधियाँ प्रदान की जाने लगीं तो मेरे पुत्रो ! देखो वह 'ब्रह्मवृत्तः देवः' वह शान्त हो गये और कहा कि मुझे यह निर्णय कराओ कि यजमान का विमान अन्तरिक्ष में कैसे जाता है? वह कैसे बनता है? हम यह जानना चाहते हैं। मेरे प्यारे ! देखो, नाना ब्राह्मण मौन हो गये, क्योंकि ब्राह्मण उस प्रक्रिया को क्रिया से नहीं जानते थे। मेरे प्यारे ! जब यजमान ने ऐसा कहा तो नाना ऋषिवर मौन रहे, क्योंकि दर्शनों की भाषा में तो वह निर्णय दे सकते थे, परन्तु वह चाहते थे कि विज्ञान की महत्ता होनी चाहिए। विज्ञान इस सम्बन्ध में क्या कहता है? तो मेरे प्यारे ! देखो, वे शान्त हो गये।

इतने में महर्षि भारद्वाज, ब्रह्मचारी सुकेता, ब्रह्मचारिणी शबरी ने यह विचारा कि चलो आज महापुरुष के यहाँ याग हो रहा है। ऐसा मुझे स्मरण है, पुत्रो ! जब इतने में भारद्वाज का पर्दापण हुआ तो भारद्वाज मुनि महाराज ने दृष्टिपात् किया कि सभा शून्य है। यज्ञशाला में प्राणी शून्य हैं। यजमान भी शून्य-गति को प्राप्त हो रहा है। उन्होंने कहा कि महाराज ! आप मौन क्यों हैं ? राम कहते हैं कि मैंने यह निश्चय किया है, मुझे निर्णय कराओ कि मेरा याग यह ऊँचा होना चाहिए। याग में सफलता प्राप्त होनी चाहिए, परन्तु मुझे सफलता का कोई आकार प्रतीत नहीं हो रहा। वह बोले कि क्यों ? वह बोले कि मुझे कुछ ऐसा ही प्रतीत हो रहा है। स्वतः हो रहा है। परन्तु कोई वाक्य

नहीं, मेरा यह प्रतीत मिथ्या भी हो सकता है। मेरे प्यारे ! देखो, 'यज्ञं ब्रह्मेः' जब महर्षि भारद्वाज ने ऐसा कहा तो राम कहते हैं, महाराज ! मेरी यह कामना है, मेरी यह इच्छा है कि मैं इस यज्ञशाला में यजमान का विमान दृष्टिपात् करना चाहता हूँ। यह वाक्य उच्चारण किया और मौन हो गये। परन्तु महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने ब्रह्मचारी सुकेता और ब्रह्मचरिणी शबरी को आदेश दिया और वह भ्रमण करते हुए अपने आश्रम में आये। नाना प्रकार के यन्त्रों को स्थिर करके, मेरे पुत्रो ! वहाँ से उन्होंने गमन किया और अयोध्या में आ गये, जहाँ राम यज्ञशाला में यजमान की उपाधि से सुशोभित हो रहे थे। उद्‌गाता उद्‌गान गा रहा है। अध्वर्यु अपनी स्वर-ध्वनि में प्रवेश कर रहा है।

यजमान के द्यौगामी विमान का चित्र-दर्शन

मेरे प्यारे ! भिन्न-भिन्न विचारधाराएं मानव के मस्तिष्कों में क्या, संसार इसके सम्बन्ध में विचारता रहता है और चिन्तन करता रहता है कि हमारा जीवन कैसे महान और पवित्रता को प्राप्त कर सकता है। 'यज्ञं ब्रह्मे' ऋषि ने कहा कि राम ! तुम अब याग करो। राम, मुनिवरो ! ज्यों ही यज्ञशाला में आहुति देने लगे त्यों ही इतने में ब्रह्मचारियों ने नाना प्रकार के तन्तुओं को कटिबद्ध कर दिया और याग उन्हें दृष्टिपात् आने लगा। मानो उनकी विज्ञानशाला में जो नाना प्रकार के यंत्र विद्यमान थे, उन यंत्रों में यह विशेषता थी कि शब्द के साथ में जो चित्र जाता है वह कहाँ जाता है, किस गति को प्राप्त होता है, वह उन यंत्रों में स्वतः दृष्टिपात् होता था। तो मेरे प्यारे ! महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने नाना प्रकार के यंत्रों में राम का, सीता का चित्र, नाना अध्वर्यु, उद्‌गाता, जो भी 'स्वाहा' कहता था, उसका चित्र बन करके द्यौ-लोक को जाता राम को दृष्टिपात् होने लगा। मेरे प्यारे ! उस समय भारद्वाज मुनि कहते हैं—हे राजन् ! यह हमने विज्ञान के द्वारा तुम्हें कुछ दृष्टिपात्

कराया है। नाना प्रकार का विज्ञान मानव के मस्तिष्क में रहता है, विचारों में रहता है।

आज का हमारा वेद का ऋषि तो यही कहता है कि हे मानव ! तू अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो करके अपने कार्य-कलापों में तुम्हें परिणित रहना चाहिए। तो मेरे प्यारे ! देखो, यह नाना प्रकार के यंत्र चित्रावली में दृष्टिपात् आने लगे तो राम मौन हो गये। महर्षि भारद्वाज मुनि कहते हैं—राम ! यह तुम्हें ज्ञान होना चाहिए, यह तुम्हें प्रतीत रहना चाहिए, कोई भी मानव इतनी आभा में, इतनी वृत्तियों में रमण नहीं करना चाहिए। परन्तु उसे शनै-शनै जीवन को ऊँचा ले जाना चाहिए। परन्तु जब ऐसा वाक्य उन्होंने प्रकट किया तो वह (राम) बोले—महाराज ! हम आपके वाक्यों को स्वीकार नहीं करेंगे। क्योंकि नाना प्रकार की जो कृति हैं, नाना प्रकार की जो भावनाएं हैं, यही तो मानव को एक सूत्र में ला देती हैं और एक ही सूत्र में मानव को पिरो देती हैं।

ऋषि की विज्ञानशाला में यंत्रों में नाना प्रकार के चित्र दृष्टिपात् होते थे। परन्तु उन दृष्टियों में आज हम जाना नहीं चाहते हैं। विचार यह देने के लिए आये हैं कि प्रत्येक मानव को अपने जीवन को यागमय बनाना चाहिए। राम का जीवन जब मुझे स्मरण आने लगता है, मेरे प्यारे ! अन्तरिक्ष में जब तारा-मण्डल अपने प्रकाश में रहते हैं, उस समय राम अपने आसन को त्याग देते और आसन को त्याग करके वह नाना अपने क्रियाकलापों से निवृत्त हो करके उसके पश्चात्, मुनिवरो ! कुछ उपदेश होता, चिन्तन होता, मानो वह प्रत्येक इन्द्रियों को तपाते रहते थे। अध्ययन करते रहते। तो मेरे प्यारे ! विचार-विनिमय क्या ? कि वह सर्वत्रत्त्व क्या है, जो मानव इतने कार्य कर रहा है ? परन्तु वह वस्तुतः क्या है, जो ऋषियों ने, बेटा ! अपना मन्तव्य प्रकट किया,

अपनी-अपनी विचारधारा को प्रकट किया कि हे राम ! अब तुम्हारा यह जो याग है, यह पवित्र है, परन्तु तुम्हारी यह इच्छा है कि मैं राष्ट्र को, ब्रह्माण को जानना चाहता हूँ तो वह जाना जा सकता है। वह जाना कैसे जाएगा ? जब तक मानव के जीवन में सार्थकता का जन्म नहीं होगा। मानवता का व्यवहार नहीं होगा तब तक मानव का जीवन कदापि भी सुन्दर नहीं बन पाएगा। **मेरे प्यारे ! प्रत्येक मानव का जीवन यागमय रहना चाहिए। यज्ञशाला में नाना प्रकार के यागों से मानव के जीवन में आभा उत्पन्न होगी। उसकी पवित्रता उसके आसन को ग्रहण कर जाएगी।** परन्तु देखो विचार क्या है ? मेरे पुत्रो ! देखो, प्रत्येक मानव, प्रत्येक देवकन्या को अपना विचार-विनिमय करना है। अपने देव की आराधना करनी है, जो सर्वत्र जगत् का उपास्य देव है। जो मानव को उपदेश देता है कि मानव का जीवन यज्ञमयी होना चाहिए, क्योंकि याग ही मानव के जीवन को ऊँचा बना देता है।

मेरे प्यारे ! उस देव-पूजा में दो प्रकार के भौतिक और आध्यात्मिक साकल्यों को दृष्टिपात् कर लेना चाहिए, जिससे मानव के द्वारा नाना साकल्य बन करके मानव के जीवन की सार्थकता का प्रतीक होता रहे। तो विचार-विनिमय क्या कि प्रत्येक मानव, प्रत्येक देव कन्या को, बेटा ! संसार में आ करके अपने मानवीय जीवन को पवित्र बनाना है, मानवीय जीवन को ऊँचा बनाना है, याग में ले जाना है। मेरे पुत्रो ! एक मानव वैज्ञानिक बनना चाहता है, परन्तु वह विज्ञान के युग में प्रवेश करता हुआ वह भी इसी प्रकार की माला को निर्धारित कर देता है। उसी माला को मानव जब धारण कर लेता है तो अमरावती को प्राप्त हो जाता है। तो आओ, मेरे प्यारे ! देखो राम का याग लगभग छः माह तक प्रारम्भ रहा। तो महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज के द्वारा उन्हें नाना प्रकार के चित्रों में उनकी आभा दृष्टिपात् आ रही थी। आओ, मेरे प्यारे ! आज का विचार-विनिमय क्या ? मैं विशेष चर्चा तुम्हें

देने नहीं आया हूँ, मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ, परन्तु संक्षिप्त परिचय देने चला आता हूँ। परिचय ना हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। तो आओ मेरे प्यारे ! आज का हमारा विचार क्या कह रहा था ? वैशम्पायन आदि ऋषियों ने, विभाण्डक इत्यादियों ने इस प्रकार के क्रिया-कलापों को दृष्टिपात् किया तो उन्होंने कहा—धन्य है, भगवन् ! धन्य-धन्य में ही आभायित हो गये ! आभायित होकर ही मानव अपने जीवन की आभा को प्राप्त करता रहता है।

आओ, मेरे प्यारे ! देखो, आज का हमारा यह विचार क्या कह रहा है? मानव के शब्दों का चित्र, जिस प्रकार का, जिस आकार की वह यज्ञशाला है, उसी प्रकार का विमान बन करके, बेटा ! चित्रशाला में, मुनिवरो ! वह शब्द के साथ में साकल्य के साथ में द्यौ-लोक को जाता हुआ उन्हें दृष्टिपात् हो रहा था, यथार्थ में। तो विचार-विनिमय क्या ? मुनिवरो ! प्रत्येक मानव वैज्ञानिकता में प्रवेश करना चाहता है, क्योंकि विज्ञान भी हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार कहलाया गया है, क्योंकि नाना प्रकार के प्राणी आते हैं तो नाना प्रकार की आभा उनके मस्तिष्कों में निहित रहती है। नाना प्रकार की आभा वाले जो प्राणी हैं, वह अपने जीवन को यज्ञ में ही परिणित कर देते हैं, यज्ञ में ही-ओत-प्रोत हो जाते हैं।

याग से दीर्घायु और साधना

मुनिवरो ! देखो, यज्ञ एक महान कार्य है। उसमें किसी प्रकार की विडम्बना नहीं है, परन्तु नाना प्रकार की आभा वाला मानव ही विडम्बनित होता रहता है। इसीलिए विडम्बना मानव के हृदय में नहीं होनी चाहिए। **हे मानव ! तू अपने जीवन को यज्ञमयी बना। अपने को देवताओं के समीप ले चल और देवता जब तुझे अपना लेंगे तो**

तेरी आयु दीर्घ होगी। दीर्घायु वाला बन, क्योंकि दीर्घायु वाला जो प्राणी है वह, मेरे प्यारे ! मानव के जीवन को एक अभ्यस्त कराता हुआ मनस्त्व-प्राणस्त्व, दोनों को एक सूत्र में ला करके, बेटा ! साधना के क्षेत्र में प्रवेश कर जाता है। मेरे प्यारे ! कौन मानव साधक होता है? साधक वहीं कहलाता है, जिस मानव का जीवन यज्ञ में प्रवेश कर गया है, यज्ञमयी बन गया है। वही मानव, मेरे प्यारे ! याज्ञिक कहलाता है, वही देवत्त्व को प्राप्त होता है।

मेरे पुत्रो ! आज मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। आज का विचार-विनिमय क्या है? आज का विचार यह कहता है कि प्रत्येक मानव को अपने जीवन को यज्ञमय बनाना है। त्रुटियों को दृष्टिपात् नहीं करना है। त्रुटियों से उपराम होने का प्रयास करना हैं, जिससे, मुनिवरो ! मानव तृतीय आभा को अपना करके मानवीय जीवन को सुसज्जित बनाता हुआ, पवित्र बनाता हुआ इस सागर से पार हो जाता है। आओ, मेरे पुत्रो ! मैं केवल वाक्य यह प्रकट करने आया हूँ कि प्रत्येक मानव को अपने मानवीय जीवन को यज्ञमयी बनाना है।

याज्ञिक और ब्रह्मचर्य-रक्षा

मेरे प्यारे ! एक वह मानव याज्ञिक बन रहा है, जो मानव अपने ब्रह्मचर्य की रक्षा कर रहा है। ब्रह्मचारी बन करके, मुनिवरो ! 'ब्रह्मचरिष्यामि', वह मानव यज्ञशाला में विराजमान हो करके चरि की रक्षा, चरि को विचार रहा है। **चरि किसे कहते हैं ? बेटा ! चरि तो वास्तव में, जितना भी प्रभु का ज्ञान है, वेद का ज्ञान, जितना भी ज्ञान और दर्शन है वह सर्वत्र चरि कहलाती है।** जिस चरि की रक्षा करने वाला मानव सागर से पार होता है। हमारे याज्ञिक पुरुषों ने

कहा है, यज्ञवेत्ताओं ने कहा है कि जैसे यज्ञ एक स्थली कहलाता है इसी प्रकार समुद्र की मेखला बनी हुई है पृथ्वी के आंगन में, वह भी संचार है। वह चलन संचारित होता रहता है, जिससे पृथ्वी के विष को समुद्र अपने में धारण करता रहता है। इसी प्रकार, हे मानव ! तेरा जीवन भी पवित्र होना चाहिए। जीवन में तरंगें होनी चाहिएं। जिन तरंगों को अपना करके हम इस संसार-सागर से पार हो जाएं। हम चरि को चरने वाले बनें।

बेटा ! चरि किसे कहते हैं ? ब्रह्मवेत्ता भी चरि की रक्षा करते हैं। वो ब्रह्मवेत्ता कौन ? मुनिवरो ! 'ब्रह्मवेत्ता' वह कहलाते हैं, जो ब्रह्म की उड़ान उड़ने वाले हों। **ब्रह्मवेत्ता वह कहलाते हैं, जो ब्रह्मचारी हों। ब्रह्मचारी वह कहलाते हैं, जो चरि की रक्षा करने वाले हों। चरि की वह रक्षा करते हैं, जो मेरे प्यारे ! अपने जीवन को यज्ञ में परिणत कर लेते हैं** तो परिणाम क्या है ? प्रत्येक मानव यज्ञ में प्रवेश करना चाहता है, याज्ञिक बनना चाहता है, उस यज्ञ में वह प्रवेश हो रहा है।

याज्ञिक का अष्ट-चक्रीय मधुपान

मुनिवरो ! आज का हमारा वेद का मन्त्र, वेद का उपदेश क्या कह रहा है ? वेद का वाक्य यही कहता है—हे मानव ! तू जीवन को ऊँचा ले चल। जीवन को मधुमयी बना। जब तुम उस प्रभु को माता स्वीकार करके उसकी लोरियों का पान करने लगोगे तो वह 'मधु' बन करके तुम्हें 'मधु' में परिणित करा देती है। 'मधु' नाम, बेटा ! ज्ञान को कहा गया है। मधु हमारे यहाँ विज्ञान को भी कहा गया है। हमारे यहाँ मधु को सोम कहते हैं, मधु भी कहते हैं। जब योगीजन, बेटा ! साधना में प्रवेश करते हैं और साधना में प्रवेश करके जब वह प्राणों का निरोध करता है, प्राण और अपान दोनों का निरोध करता है, निरोध

करता हुआ, मेरे प्यारे ! मानसत्त्व-प्राणसत्त्व को एक सूत्र में लाता है। मन और प्राण जब एक सूत्र में आते हैं, इन दोनों का समन्वय होना प्रारम्भ हो जाता है, तो मुनिवरो ! यह जो आत्मा है यह प्राण को अपना आश्रय बना करके, मन को अपना आश्रय बना करके यह मूलाधार से गति करता है मानो नाभि-चक्र में आता है। हृदय में आता है, कण्ठ-चक्र को होता हुआ वह, मुनिवरो ! स्वादिष्ट चक्र में रमण करता हुआ ब्रह्मरन्ध्र में, मुनिवरो ! देखो, त्रिवेणी में और ब्रह्मरन्ध्र में अब गति करता है। ब्रह्मरन्ध्र, ऊर्ध्वा-गति से जब गति करना प्रारम्भ करता है, जब प्राणों की धुकधुकी लगती है, आत्मा का ज्ञान उसमें विकसित होता है, तो मुनिवरो ! ब्रह्मरन्ध्र, गति से गति करना प्रारम्भ कर देता है तो उसमें से ऐसा कहते हैं योगीजन कि उस उपरले स्थान में एक पिपाग स्थान कहलाता है, इस पिपाग स्थान से, बेटा ! वह रस, जिसे 'मधु' कहते हैं, उसकी एक-एक कणिणा प्राप्त होने लगती है। मेरे प्यारे ! वह ब्रह्मरन्ध्र में जब गति करती है तो परमाणु, बेटा ! आभा में गति करते हैं तो स्वाधिष्ठान जो चक्र है, उन परमाणुओं से आभायित हो करके ब्रह्मरन्ध्र में ऊर्ध्वा गति को प्राप्त होता है।

हमारे यहाँ ऋषि-मुनियों ने बहुत पुरुषार्थ किया, उन्होंने अनुसन्धान किया और यह कहा कि प्राण और अपान दोनों का सन्निधान करना जो जानता है, समान का सन्निधान करना जानता है, व्यान का जानता है, उदान का जानता है, इन पाँचों प्राणों को जो एक सूत्र में लाना जानता है और वह, मेरे प्यारे ! जितना भी यह संसार प्राण रूपी सूत्र में पिरोया हुआ है, चेतना में पिरोया हुआ है, योगी, बेटा ! उसका साक्षात्कार करने लगता है। **क्योंकि योगी ही उसे कहते हैं जो, मेरे प्यारे ! जितना भी यह बाह्य-जगत्, आन्तरिक जगत् जो एक ही सूत्र में पिरोया हुआ है, उस सूत्र को जान जाए उस सर्वत्र**

ब्रह्माण्ड का उसे, मेरे प्यारे ! बोध हो जाता है, ज्ञान हो जाता है, वह सोम-रस को पान करने लगता है।

मेरे प्यारे ! आज मैं योग के क्षेत्र में, साधना के क्षेत्र में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। विचार-विनिमय क्या है ? मेरे प्यारे ! देखो, मानव के द्वारा कुछ मनके हैं और वह मनके एक सूत्र में पिरोना चाहता है। मेरे प्यारे ! वह कौन से मनके हैं ? **मानव को जो श्वास-प्रश्वास आते हैं, वह एक मनके कहलाते हैं। 'ओ३म्' रूपी सूत्र में, बेटा ! इन मनकों को पिरोना है। यदि उन मनकों को वह ओ३म् रूपी सूत्र में पिरो देता है तो मुनिवरो ! प्रत्येक श्वास-प्रश्वास ओ३म् रूपी क्षेत्र में जब प्रवेश कर जाते हैं तो वह योगी, बेटा ! ब्रह्म की चरि को चरने लगता है। और वह जब ब्रह्म की चरि को चरने लगता है, उसकी ऊर्ध्वा गति हो जाती है। ऊर्ध्वा गति बन करके, बेटा ! वह सर्वत्र ब्रह्माण्ड को साक्षात्कार करने लगता है।**

विचार-विनिमय क्या ? मेरे प्यारे ! ऋषि-मुनि सदैव क्या चाहते हैं कि ब्रह्माण्ड को इस पिण्ड में ही दृष्टिपात् करना चाहते हैं, क्योंकि उन्होंने अपनी अनुसन्धान की लेखनियां बद्ध की हैं। लेखनियां बद्ध करके उन्होंने सुन्दर-सुन्दर विचार दिए हैं। तो विचार-विनिमय क्या ? मेरे प्यारे ! देखो, प्रत्येक मानव को अपने जीवन को याग में ले जाना चाहिए जैसे मानव अग्न्याधान करके, उद्‌बुध्यस्वाग्ने' मंत्र कह करके वह अग्नि को प्रदीप्त करता है इसी प्रकार, हे मानव ! जैसे तू बाह्य अग्नि को जागरूक करता है इसी प्रकार तेरी जो आन्तरिक अग्नि है जो आभा में प्रकट हो रही है, तू उसको जागरूक बना। उस अग्नि को जब तू जागरूक बनाएगा। 'उद्‌बुध्यस्वाग्ने' कह करके जब तू उसे चेताने के लिए तत्पर होगा। वह अग्नि जहाँ चेती, उस अग्नि के चेतने के पश्चात् सार्वभौम जो अग्नि है और आन्तरिक-अग्नि दोनों का तारतम्य

लग जाएगा। मेरे प्यारे ! तेरा जीवन अग्निमय क्या यज्ञमय हो जाएगा ! वह याग का प्रवेश है, यज्ञमयी जीवन को बनाना है, बेटा !

सार्वभौम-याग निरूपण

सृष्टि के प्रारम्भ में, जब मेरे प्यारे प्रभु ने इस संसार रूपी यज्ञशाला का निर्माण किया, बेटा ! इसमें प्रत्येक याग का अभिप्रायः क्या है ? जैसे यज्ञशाला में से सुगन्धि उत्पन्न होती है और वह सुगन्धि मानो प्रत्येक प्राणी के लिए होती है। प्रत्येक वनस्पति के लिए होती है। इसी प्रकार, मेरे प्यारे प्रभु ने जब यह संसार रूपी यज्ञशाला का निर्माण किया, तो मेरे प्यारे ! यज्ञशाला का निर्माणवेत्ता कौन ? मेरा प्यारा प्रभु है, परन्तु देखो ! उस समय आत्मा यजमान बनता है और मुनिवरो ! यह जो पंचीकरण तत्व हैं, पांच तत्व हैं मानो यह पंच महाभूत, बेटा ! देखो कोई उद्‌गाता बनता है, कोई अध्वर्यु बनता है, कोई मानो देखो ध्वनि कर रहा है। यह जो नाना, देखो ! परमात्मा ने संसार रूपी यज्ञशाला का निर्माण किया है उसका यह आत्मा यजमान बना हुआ है। आत्मा जब यजमान बन करके इस यज्ञशाला में विद्यमान हो करके, मेरे प्यारे ! अपने को ओ३म् रूपी क्षेत्र में ब्रह्म-चेतना में पिरो देता है तो यह, बेटा ! उसका व्यापक एक याग बन जाता है।

तो आओ मेरे प्यारे ! देखो हम बाह्य और आन्तरिक दोनों यागों का समन्वय करना चाहते हैं। जब उनका मिलान हो जाता है। उसकी आभा में रमण करता रहता है तो मानव के जीवन में एक सुन्दरता छा जाती है, वह विचारने लगता है। हे मानव ! तू अपने जीवन में रुग्ण भी नहीं रहेगा जब तू प्राणों का निरोध करेगा। जो मानव संसार में, बेटा ! ओ३म् रूपी क्षेत्र में इस अपने प्राणरूपी मनके को पिरोने लगता है, तो बेटा ! उसके जीवन में रुग्ण भी नहीं रहेगा।

उनके शरीरों में रुग्ण भी नहीं रहते। वह रुग्ण भी दूर चले जाते हैं। परन्तु देखो ब्रह्म के आंगन को, वह जो अग्नि चेत रही है, उस अग्नि को अपने में धारण करना ही मानव का जीवन कहलाया गया है।

तो बेटा ! हमारा वह विचार-विनिमय हो रहा था, कुछ संक्षिप्त परिचय दे रहा था, यज्ञ के सम्बन्ध में। तो महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज ने राम की उस यज्ञशाला में महर्षि वैशम्पायन इत्यादियों को जब यह निर्णय कराया तो भारद्वाज मुनि महाराज आध्यात्मिकवेत्ता भी उतने ही थे, आध्यात्मिक उपदेश भी देते थे, और, मुनिवरो ! जब कोई भी मानव आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करना चाहता है, यौगिकता में कोई भी मानव जाए तो आध्यात्मिकवाद के मार्ग में भौतिकवाद के मार्ग से हो करके ही प्रवेश करता है। इसीलिए भौतिकवाद को जानना और जानकर, मेरे प्यारे ! आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करना, उसको जानना, यह सार्वभौम एक याग कहलाता है, बेटा !

आओ, मेरे प्यारे ! इसीलिए वेद के ऋषि यही कहते हैं, हे मानव ! तू अपने जीवन को यागमयी बना। तू नाना प्रकार की चित्रावलियों का दर्शन कर। उन चित्रावलियों का दर्शन करके अपने आन्तरिक जगत् में उन नाना प्रकार के चित्रों का दर्शन कर। इस ब्रह्माण्ड को तू अपने में भी धारण करता हुआ तू इसको जानता हुआ, बेटा ! इस संसार-सागर से पार हो जाता है।

आओ, मेरे प्यारे ! आज का हमारा विचार क्या ? कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए अपने याग को ऊँचा बनाते रहें। भौतिक विज्ञान, आध्यात्मिक विज्ञान में जो मानव अपने में प्रकाश को स्वीकार कर लेता है तो, बेटा ! उस मानव की मृत्यु भी नहीं होती। वह मानव मृत्यु से पार हो जाता है, क्योंकि प्रकाश का नाम जीवन है और अन्धकार का नाम मृत्यु कहलाता है। तो इसीलिए बेटा ! प्रत्येक

मानव को अन्धकार को त्यागना है और प्रकाश को लाना है। और वह प्रकाश बिना ज्ञान और विवेक के मानव को उत्पन्न नहीं होता।

आओ, मेरे प्यारे ! यह आज का हमारा वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुण-गान गाते हुए अपने प्रत्येक श्वास को, मनकों को, बेटा ! हम एक सूत्र में पिरोते चले जाएं और, मुनिवरो ! अपने जीवन को यज्ञमयी बनाते चले जाएं। क्योंकि यज्ञमयी जीवन मानव को ऊँचा बनाता है। यह आज का वाक्य समाप्त। अब वेदों का पठन-पाठन होगा। इसके पश्चात् यह वार्ता समाप्त हो जाएगी।

वैदिक साधना आश्रम,
तपोवन, देहरादून
३० अप्रैल, १९७७.

याग में ही विज्ञान

ॐ भद्रा सुमञ्जनाः रथम् ब्रह्मो आहध्याः।
यञ्जनः सानिः ब्रह्मचरिष्यामि गत विषाहम् मधुता रक्षणम्।।
एव द्यौलोकाः इदम् सर्वाणि भद्र बसुन्धरौ।
इथासम् गोमेहाविनम् प्रजाम् गतेहम् सर्वस्या भद्रं भो रथः।।
सञ्जनाः हृद्गतौ सर्वाणि भद्रा मं धे रथम् ब्रह्मचरिष्यामि गताः।
प्राधिरिणी विशारथम् ममत्वा रथष्चम् मधुरम् महा।।
ममत्वारधि सर्वम् भद्र।

देखो मुनिवरो आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद मंत्रों का गुणगानगाते चले जा रहे थे ये भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मंत्रों का पठन पाठन किया हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस पवित्र वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है। जिस पवित्र वेद वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की गाथा का वर्णन किया जाता रहा है। क्योंकि प्रत्येक वेद मन्त्र उस परमपिता परमात्मा की गाथा गा रहा है। जिस प्रकार माता का पुत्र माता की गाथा गाता ही रहता है। जैसे पृथ्वी ब्रह्माण्ड की गाथा गाती रहती है। इसी प्रकार प्रत्येक वेद मन्त्र उस परमपिता परमात्मा की गाथा गाता रहता है। क्योंकि प्रत्येक वेद मन्त्र में उस ब्रह्ममयी स्वरूप का वर्णन आता रहता है। जिस मेरे देव ने इस ब्रह्माण्ड को रचा है। जो नाना प्रकार के लोक लोकान्तरों वाला जगत हमें दृष्टिपात हो रहा है। हम एक नहीं द्वितीय नहीं अनन्नतता में रमण करते है। परन्तु सर्वत्र अनन्तता में प्रभु का दिग्दर्शन होता है। कोई वस्तु ऐसी नहीं है, जिस वस्तु के गर्भ में उस परमपिता परमात्मा की आभा न हो। प्रत्येक स्वाँस जैसे मानव के शरीर में गति कर रहा है, इसी प्रकार

ब्रह्माण्ड में, अन्तरिक्ष में गति कर रहा है। क्योंकि वह चित्रित होता रहता है। प्रत्येक शब्द के साथ चित्रण होता रहता है। प्रत्येक श्वाँस के साथ चित्रण होता रहता है।

कर्मकाण्ड में 'अहिंसा परमोधर्म'

तुम्हें उस आभा में वर्णन कराने के लिये आया हूँ। जहाँ ऋषि मुनि विद्यमान होकर के विज्ञान की उड़ान उड़ते रहते हैं। जहाँ गुरु शिष्य दोनों का समन्वय होता रहा है। मेरे पुत्र ने संक्षिप्त वाक्यों में नाना प्रकार की चर्चायें की हैं, याग के सम्बन्ध में, उसको अहिंसा में परिणत किया है। राष्ट्र की चर्चायें की और कुछ विज्ञान वेत्ताओं के सम्बन्ध में विचार धाराएँ प्रकट की परन्तु जहाँ हम कर्म काण्ड की आभाओं पर परिणित होते हैं। तो संसार के किसी भी कर्म काण्ड में हिंसा का प्रसङ्ग नहीं होता है। एक याग नहीं जितना भी संसार का कल्पनात्मक सर्वत्र कर्म है, उस किसी भी कर्म में बेटा हिंसा उत्पन्न नहीं होती। मुझे स्मरण आता रहता है, एक समय व्रेतकेतु मुनिवर मङ्गल के कई लोक में भ्रमण किया और जब वे इस पृथ्वी मण्डल पर आये तो वे गाड़ी वान रेवक के समीप जा पहुँचे गाड़ी वान रेवक उनके गुरु थे गाड़ी वान रेवक ने कहा कहो ऋषिवर आप मङ्गल से आये हैं। तो वायु मण्डल की आभा प्रकट करो तो ऋषि कहता है कि मङ्गल मण्डल में "यागाम् ब्रह्मा रेवस्वतत्वम", मानो वहाँ याग होता है। अहिंसा में रमण करने वाला प्राणी है। मेरे पुत्रों वहाँ अहिंसा की आभा मानवीय क्षेत्र में रमण करती रही है। एक मण्डल नहीं नाना मण्डलों की विवेचना आती रहती है। जहाँ लोक लोकान्तरों में कर्म काण्ड का प्रसङ्ग आता रहता है, वहाँ इस पृथ्वी मण्डल पर समाज मानव सर्वाङ्ग कहलाता है। जैसे नाना प्राणी और भी रमण करते रहते है। तो मानव योनि एक ऐसी योनि है जो सर्वाङ्ग है। ये प्रवृत्तियों का वर्णन वैदिक साहित्य में प्राप्त होता रहता है। वैदिक साहित्य में मानो जीवन में दसों इन्द्रियों

का वर्णन वर्णित होता रहा है। तो मेरे पुत्रों यह सर्वाङ्ग जो प्राणी है। ये नाना प्रकार की उड़ान उड़ता रहता है। चाहे पृथ्वी मण्डल पर हो चाहे वह मङ्गल में रहता हो, चाहे वो बुध में रहता हो, किसी भी लोक का प्राणी हो परन्तु वह सर्वाङ्ग है। इसीलये अहिंसा परमो धर्म को जानता है। ये इसके गर्भ में ओत-प्रोत होता रहा है। तो जब रेवक मुनि ने उनसे ये कहा कि हे पुत्र ! तुम मङ्गल में पहुँच तुमसे कुछ वार्ता हुई ? तो वेद का ऋषि कहता है कि वहाँ भी प्राणी हमारे इस पृथ्वी मण्डल जैसे ही प्राणी गमन करते हैं। परन्तु वहाँ याग शालाएँ भी हैं। पूजाएँ भी होती रहती हैं। विज्ञान यहाँ से सहस्रों वर्ष अग्रणी विज्ञान माना गया है। मेरे प्यारे यही महाभारत के काल में महाराजा अर्जुन ने भी प्रकट कराया था।

तो मेरे प्यारे मैं लोक लोकान्तरों में चला गया हूँ। मैं इनमें जाने के लिये तो नहीं आया था विचार –विनिमय यह कि वेद का मन्त्र क्या कहता है। "सर्वाणी ब्रह्मणः मङ्गलम् वृतेदेवा अरतभम् वृतास्ते याग रुद्राः।" वेद का ऋषि कहता है। हे प्राणी तू में ही नहीं जा सकता तू नाना लोकों में सूर्य मण्डल और शनि में भी गति कर सकता है। परन्तु एक-एक शनि ऐसा है। कि एक शनि को लगभग बहत्तर सूर्य प्रकाश देते हैं। तो इतना विशाल विज्ञान प्रभु के राष्ट्र में माना गया है। तो कोई वस्तु ऐसी हमें दृष्टिपात नहीं आती है। जहाँ प्रभु की प्रतिभा न हो। जैसे मैंने अभी अभी उच्चारण किया माता का पुत्र माता की गाथा गा रहा है, जिसका वो बाल्य शिशु है। परन्तु जब वो महान बन जाता है। तो माता की गाथा गा रहा है। प्रत्येक मानव कह रहा है कि यह माता का पुत्र है। तो माता का प्रतिबिम्ब मानो वो पुत्र हृदय ग्राही बन गया हैं।

जैसे मुनिवरो ये पृथ्वी है। ये ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है। जिस

प्रकार नाना लोक लोकान्तर प्रभु की गाथा गा रहा है। माता का पुत्र माता की गाथा गा रहा है। इसी प्रकार पृथ्वी जो वसुन्धरा है, यह उस ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है, जो ब्रह्माण्ड रचित हो रहा है। किसी किसी काल में साधना की गयी थी जब पृथ्वी के गर्भ में योगी अपनी श्रुतियों को ले जाता है। तो योगास्थली में परिणत होकर के बेटा पृथ्वी के गर्भ में योगी प्रवेश कर जाता है। और योगी इस पृथ्वी के गर्भ में जितना खाद्य और खनिज पदार्थ है, वे जिस प्रकार गति कर रहा है, उसे साक्षात्कार दृष्टिपात करता है। मुझे बेटा स्मरण आता रहता है। भारद्वाज मुनि महाराज एक समय साधना कक्ष में चले गये अपने विज्ञान की प्रतिभा को अज्ञात वास में परिणित कर गये। और क्यों कर गये क्योंकि उनके समीप गये ऋषि परकेतु मुनि महाराज की कन्या सबरी जब उनके चरणों में ओत प्रोत होती थी तो उनसे प्रश्न किया करती, हे प्रभु ! मैं ये जानना चाहती हूँ कि पृथ्वी के गर्भ में क्या है। तो भारद्वाज मुनि महाराज विज्ञान की वार्त्ता प्रगट करते थे परन्तु सवरी ने एक समय ये प्रश्न किया कि महाराज ये तो मैं जानती हूँ। विज्ञान तो मैंने अध्ययन किया है। परन्तु मैं यह नहीं जान पाती कि यौगिक प्रक्रिया क्या करती है। तो ऋषि भारद्वाज उस कन्या के प्रश्न करने पर भयङ्कर वनों में चले गये। अज्ञातवास में मध्य रात्रि में आसन को त्याग दिया वो इस बात पर अनुसन्धान और साधना करते रहे। और जब ये साधना के कक्ष में पहुँचे पृथ्वी के गर्भ में पहुँचे तो पृथ्वी के गर्भ स्थल में नाना गति करता हुआ परमाणुवाद अग्नि की तरङ्गों में दृष्टिपात हो गया जब अग्नि की तरङ्गों में दृष्टि पात होने लगा। "परमाणु गतः प्रव्हेः" तो वहाँ सूर्य की किरणें भी उनको दृष्टिपात होने लगीं तो सूर्य की किरणें मानो शोधन कर रही थीं, परमाणुओं का निर्माण कर रही थीं, जन्म को निर्माणित कर रही थीं, जल को शक्तिशाली बना रही थीं तब ये उनके विचार में आया कि ये तो सूर्य की किरणें

ही निर्माण कर रही हैं। अग्नि द्यौ लोक से आकर के इस पृथ्वी को गति देती जा रही है। यह गति अपने में और मुनिवरो देखो वाह्य भाग में दोनों में ऋषि दृष्टि पात कर रहे थे एक वर्ष के पश्चात अपने आश्रम में आ गये।

मुनिवरो देखो देवी पुत्री सवरी ने चरणों को स्पर्श करके कहा कहिये भगवन आप अज्ञातवासी हो गये हम मानो निरसाया बन गये हमारे ऊपर किसी की साया नहीं रही परन्तु मेरा वो ही प्रश्न किया कि हे प्रभु! मैं जानना चाहती हूँ। कि इस पृथ्वी को वसुन्धरा क्यों कहते है। तो मुनिवरो देखो इन्होंने कहा हे पुत्री इस पृथ्वी को इसलिये वसुन्धरा कहते हैं, क्योंकि इसके गर्भ में वसीभूत हैं। ये संसार इसमें वस रहा है। आभा में गति कर रहा है। प्रत्येक प्राणी जब मैं पृथ्वी को योग से दृष्टिपात करता हूँ तो मेरे शरीर में पार्थिक तत्व विद्यमान है। जो बाह्य और आन्तरिक जगत में गति कर रहा हैं। परमाणु सूर्य की किरणों के साथ-साथ गति कर रहा है। वही परमाणु मानोदेखो प्रथ्वी माता के गर्भ-स्थल में ओतप्रोत और गतिकर रहा है। इससे हमें दृष्टिपात होता है कि सूर्य की किरणों को एकत्रित किया जाये और वाहनों की गतियाँ होनी चाहिये ऐसा प्रतीत होता है। मानो जैसे सूर्य जल को शक्तिशाली बना रहा है। जल को यन्त्रों के योग्य बना रहा है! स्वर्ण का निर्माण किया जा रहा है। तो इससे हमें ये सिद्ध होता है कि सूर्य की किरणें इस पृथ्वी को तपा रही हैं। तपाय मान कर रही हैं। जैसे हम माता के गर्भ स्थल में जब विद्यमान थे तो मानो उस समय सूर्य माता के गर्भ को परिपक्व बना रहा था। इसे तपा रहा था सूर्य की किरणें आकर्षण शक्ति से उसे रक्षित कर रही हैं।

मेरे प्यारे भारद्वाज मुनि महाराज शारीरिक विज्ञान की चर्चाएँ करता रहा परन्तु योग की आभा में परिणत होता रहा तो सबरी ने यहाँ एक प्रश्न किया। ऋषि से कहा कि भगवन आपको माता के गर्भाशय

का कैसे ज्ञान हुआ तो ऋषि कहता है कि हे पुत्री ! जब योगी समाधिष्ट हो जाता है तो उसे माता का गर्भाशय और पृथ्वी का गर्भाशय मानो नाना लोक लोकान्तर उसके साक्षात्कार उसके गर्भ में निहित हो जाते हैं। परन्तु उसे वो साक्षात्कार कर लेता है। इसी प्रकार माता के गर्भ स्थल में जब शिशु होता है। तो मानो योगी उसके गर्भ में प्रवेश कर जाता है। और उसके गर्भाशय में शिशु पनप रहा है। देखो इसकी प्रवृत्तियों को चिन्तन में लाता है। मुझे स्मरण आता रहता है। जिस समय मह्मर्षि दधीचि की माता शकुन्तकेतु जब वह भयङ्कर वनों में विद्यमान थी और वो तपस्या करती थी गायत्राणी छन्दों में रमण करती रहती थी एक समय बहुत काल के पश्चात् अपने ऋषि से कहा, पति से कहा हे प्रभु ! मैं पुत्र याग करना चाहती हूँ। तो ऋषि वर पणकेतु ऋषि थे वो हरी तत्व गोत्रीय कह लाते थे। ऋषि ने कहा कि अभी इच्छा नहीं है। हम इस योग्य नहीं बने हैं जो हम पुत्र का याग कर सकें। ऋषि पत्नी मौन हो गयी और बारह वर्ष तक मौन धारण कर लिया गायत्राणि छन्दों का पठन-पाठन किया। बारह वर्ष के पश्चात् ऋषि पणकेतु ने कहा कि हे देवी ! हम पुत्रेष्टि याग करेंगे पुत्र याग

दधीचि के माता-पिता का पुत्रेष्टि-याग

मेरे प्यारे जब माता के गर्भ में आत्मा का प्रवेश हो गया तो वायुमण्डल भी उसी प्रकार का बना हुआ है। प्रवृत्तियाँ भी उसी प्रकार की बनी हुई थीं तो जब छटा अमृत मास माता के शिशु को लगा तो योगी बेटा समाधिष्ट हो करके पर्वत की कन्दराओं में उस देवी के गर्भ में अपनी-प्रवृतियों को प्रवेश कराने लगा, उसकी प्रवृत्तियों को अपनी प्रवृत्तियों से मिलान करने लगा तो ऋषि को विश्वास हो गया। इस प्रकार गर्भाशय का निदान करते थे ऋषि जन। जैसे वैद्यराज औषधियों के द्वारा निदान करता है। उसका परीक्षा पालन करता है। परन्तु योगी ध्यानावस्थित हो करके परीक्षा करता है। मेरे प्यारे मैं कहाँ चला गया

हूँ। मैं अब तुम्हें इस गम्भीर रहस्य में ले गया हूँ ये बहुत गम्भीर रहस्य है। माता-पिता योगेश्वर होते थे ये उनका विषय बन गया था। मुझे स्मरण आता रहा है। क्योंकि बहुत से पुत्रेष्टि याग कराने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। परन्तु देखो ऋषिवर दधीचि को माता के गर्भ में ही दृष्टि पात कर रहा है। परन्तु माता के गर्भ से नौ माह के पश्चात् बाल्य शिशु प्रथक हुआ, जब पृथक हुआ तो नामो करण हुआ और स्वर्ण की आभा में उनका उपचारण हुआ। वो शिक्षित बन गया। माता अपनी लोरियों का पान कराती दधीचि को शिक्षा दे रही। 'त्यागाम् रुद्रा तस्मै रुद्रो वर्त्ता देवत्याम् लोकाः।'' बालक से उच्चारण कर रही है बालक हे शिशु ! तू मेरी लोरियों का पान कर रहा है। परन्तु तू महान ''यागा'' तू याग में रहना। तू मेरी लोरियों का पान कर रहा है तू लोरियों को विजय करने वाला है। अनेक लोकों में जाने वाला वन तो मुनिवरो देखो माता अपने बालक को त्याग और तपस्या का उपदेश दे रही है। किस अवस्था में दे रही है। लोरियों का पान करा रही है। और एक वेद मंत्र की ले करके व्याख्या उसके कर्णों में प्रवेश करा रही थी माता तू कैसी माता होगी कैसी पवित्र माता होगी जो अपने बालक को बह्मवेत्ता बना रही है। मेरे प्यारे ब्रह्म जिज्ञासु बना देती है। महात्मा दधीचि शिक्षालय में जाने लगा। आरूणिकेतु ऋषि थे उनके आश्रम में वो अध्ययन करते थे मुझे बेटा किसी काल में आरूणिकेतू ऋषि के आश्रम में जाने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा मेरे प्यारे उनकी दिनचर्या उनका त्याग उनका तप कितना विचित्र है, जो कोई भी अशुद्ध बात बेटा श्रोतों में नहीं आता है। मेरे प्यारे देखो महात्मा दधीचि को पिता ने अपने संरक्षण से, महान शिक्षा उसे प्रदान की और उसे महानता में परिणत कराया। चौरासी वर्षों तक पिता की आज्ञा का पालन होता रहा चौरासी वर्षों का ब्रह्मचारी बन गया, उसके मनों में एक इच्छा जागी पिता से उच्चारण करने लगे। ''हे पितरश्चतम् ब्रह्मः वरणेसि यागाम् ब्रह्म वृतः'' महात्मा दधीचि चौरासी वर्ष के पश्चात्

बोले अपने पिता से कि हे पितर ! में आपके संरक्षण में रहता हूँ, परन्तु मैं इस संसार की आभा को भी जानना चाहता हूँ। मेरे प्यारे इतना उच्चारण करते ही पिता ने क्रोतुक ऋषि महाराज जो ऋषि उद्दालक के परमपिता कहलाते थे, क्रोतुक ऋषि महाराज को आभ्यात करा दिया और दधीचि उनके द्वारा योग की आभा में भ्रमण कर रहे हैं। और योग के द्वारा इस संसार को दधीचि दृष्टिपात कर रहे हैं। जहाँ आयुर्वेद के पारायण थे वहाँ मेरे प्यारे मुझे स्मरण है कि महाराजा इन्द्र को दैत्यों के लिये एक शस्त्र बनाना था, दैत्यों को नष्ट करने के लिये, तो महात्मा दधिचि उस समय नौसों चौरासी वर्ष के थे और नौ सौ चौरासी वर्ष के महात्मा दधिचि की अस्थियों को इन्द्र ने स्वीकार किया था और उनके शरीर के "अप्रवाम् ब्रह्मेः" उनकी जो अस्थियाँ थीं वो बेटा देखो दैत्यों को नष्ट करने के लिये वज्र की आभा में यन्त्र के लिये अस्थियों को लिया था

तो मेरे प्यारे विचार विनमय क्या है कि इस संसार का निर्माण वैसे ही नहीं होता। यदि तपस्या साथ नहीं है, तो ये संसार ऊँचा नहीं बनता यदि तपस्या साथ नहीं है तो माता माता नहीं कहलाती। माता को अपने में ब्रह्मचर्य को धारण करना है। और उसे अपने पुत्र के इस योग्य बनना है कि तुझे माता बनना है। तो माता बनने के पूर्व उसे कितना तप करना है। ये बेटा देखो हमें वैदिक साहित्यों से प्राप्त होता है। वेद के मन्त्रों से हमें प्राप्त होता है। तो मेरे प्यारे मैं कहाँ चला गया हूँ। विचार ये देने जा रहा था कि माता कैसी हो और माता का जीवन कैसा हो और ऋषि का कैसा जीवन है। बारह-बारह वर्षों तक माता मौन रहने कर अपने में चिन्तन करती रही, प्रभु का स्मरण करती रही, ऋषि उदगान गाता रहा। उदगान गाने वाला आयुष्मान बन जाता है।

महात्मा दधीचि का जीवन मुझे बेटा जब स्मरण आता है। तो हृदय गद्गद हो जाता है। महात्मा दधीचि कैसे महान, निर्भय कि अश्वनि कुमारों को शिक्षा दे रहा है। अश्वनि कुमारों की शिक्षा देता हुआ दधीचि का मस्तिष्क दूरी हो रहा है। हमारे यहाँ मानव आयुर्वेद में कितना पारायण रहा है। जहाँ आयुर्वेद आभा में रमण करता रहा है। वहाँ मेरे प्यारे उसकी उड़ान लोक लोकान्तरों में रही है। मुझे स्मरण महात्मा दधीचि ने एक यन्त्र का निर्माण किया था जो यन्त्र राजा मानधाता को प्रदान किया। वो यन्त्र में विद्यमान हो करके पृथ्वी से उड़ान उड़ता हुआ गमन कर रहा है। और गमन करता हुआ वो शनि की परिक्रमा कर रहा है। बेटा कैसा शनि है। वो शनि मण्डल कितना विशाल है। बहत्तर सूर्य जो ये सूर्य प्रकाश दे रहा है, ऐसे-ऐसे सूर्य एक शनि को प्रकाश देते थे इतना विशाल शनि मण्डल जिसकी महात्मा दधिचि का यान परिक्रमा कर रहा है। देखो कितना विज्ञान मानव के मस्तिष्कों में नियुक्त रहा है।

मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी ने वर्णन कराया आधुनिक काल का वैज्ञानिक मङ्गल और चन्द्रमा तक पहुँचा है। मङ्गल और चन्द्रमा की परिक्रमा कर रहा है। मेरे प्यारे पूर्व का स्मरण आता है मुझे दधिचि और अश्वनि कुमार जैसे वैज्ञानिक और वैद्य राज भी थे वो वाहनों में विद्यमान हो करके शनि की परिक्रमा कर रहा है। कितना विशाल विज्ञान इस मानव के मस्तिष्कों में नृत करता रहा है। आज मैं विशेष चर्चा करने नहीं आया हूँ। में कोई व्याख्याता नहीं हूँ। केवल परिचय देने के लिये आता हूँ। परिचय देता रहता हूँ। तो आओ मेरे प्यारे आज मैं चर्चा कर रहा था, हे ममत्व को धारण करने वाली तेरा पुत्र तेरी गाथा गा रहा है। गाथा गाता ही रहता है।

मेरे प्यारे जैसे पृथ्वी ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है। लोकों से

अग्नि की तरङ्गें आ करके बेटा धातुओं का निर्माण कर रही हैं। निर्माण होता रहता है। और इससे राष्ट्रीयता का निर्माण होता है। यदि पृथ्वी के गर्भ में, वसुन्धरा के गर्भ में खनिज खाद्य नहीं हो तो यहाँ राष्ट्र का निर्माण भी नहीं हो, इस सम्पदा के ऊपर ही राष्ट्र का निर्माण होता है। और ये सम्पदा आती कहाँ से, बेटा सूर्य से, सूर्य की किरणों से, ये सम्पदा वसुन्धरा के गर्भ में कहाँ से आती है ? लोक लोकान्तरों से आती है। क्योंकि ये ब्रह्माण्ड की गाथा गा रही है।

एक-दूसरे की गाथा

वेद कहता है ''ब्रह्माण्डो पृथ्वी अस्वयानम् देवम् गायन्तानि रूपानि।''

बेटा पृथ्वी गाथा गा रही है। किसकी गाथा गा रही है। बेटा ये ब्रह्माण्ड के लोक की गाथा गा रही है। जैसे वाणी इस मानव के शरीर में बेटा ब्रह्म की गाथा गा रही है। कि वाणी गुणगान गा रही है, अपनी आभाओं में परिणित हो रही है। और वाणी गान गा रही है। और उदगीत बनकरके और अत्री बन करके बेटा अत्रिमें परिणित हो रही है।

वेद के ऋषियों ने कहा है। कि हमारे यहाँ इस वाणी को अत्रि कहते हैं। यह वाणी अत्रि बन करके उच्चारण देती है। अति उच्चारण करती हुई अति में परिणत होती हुई ये बेटा अत्रि कहलाती है। हमारे यहाँ अत्रि ऋषि हैं। मानो सप्तऋषियों में एक अत्रि ऋषि है। जो वाणी के रूप में परिणित होती रहती है। तो मेरे प्यारे मैं वेद की आभा में प्रकट रेत की तरङ्गों में नहीं जाना चाहता हूँ। केवल तुम्हें परिचय देने आया हूँ कि जैसे वेद का शब्द वाणी के रूप में ब्रह्म की गाथा गा रहा है। जैसे पृथ्वी इस ब्रह्माण्ड की गाथा जैसे माता की गाथा गाने

वाला पुत्र इसी प्रकार मेरे प्यारे देखो तीन प्रकार की आभा हैं इस संसार की रचिता में दृष्टिपात करने से प्रतीत होता है। मेरे प्यारे मुझे स्मरण है। आज जब मैं ऋषि मुनियों की आभा में प्रकट होता हूँ। तो ऋषि मुनि योग में प्रवेश करते रहे हैं। यौगिकता में प्रवेश करके वहाँ से रत्नों की आभा ले करके संसार को प्रशाद रूप में प्रदान कर देते हैं।

आओ मेरे प्यारे मैं तुम्हें विशेष चर्चाएँ प्रकट करने नहीं आया विचार ये देने के लिये आया हूँ, कि अपने अपने रूपों में अपने अपने रूपाकृतियों में प्रत्येक एक दूसरे की गाथा गा रहा है। बेटा जैसे पृथ्वी सूर्य की गाथा गा रही है। सूर्य ब्रह्माण्ड, आकाश-गङ्गा की गाथा गा रहा है। आकश गङ्गा नीहारिका की गाथा गा रही है। और नीहारिका लोकों की गाथा गा रही है। मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में प्रकट कराया कि ये प्रभु का राज बेटा कितना विशाल हैं। सूर्य का प्रकाश बेटा इस पृथ्वी तक आता है। और सूर्य की आभा में प्रकाश शनि का और भी लोकों का आता रहता है।

एक समय बेटा भारद्वाज मुनि से सुकेता और सबरी दोनों विद्यमान थे और ये उन्होंने कहा कि महाराज आप जितने विज्ञान में गति करते हैं। एक रक्त के बिन्दु से चित्रों का दिग्दर्शन करा देते हैं। योग में कितनी आपकी गति है ? आप योग में प्रवेश कर सकते हैं ? तो भारद्वाज मुनि ने कहा था कि योगी एक-एक परमाणु का विभाजन करके सर्वत्र सृष्टि का एक ब्रह्माण्ड में सर्वत्र ब्रह्माण्ड का चित्रण करता रहा है। क्योंकि जब एक परमाणु का विभाजन करोंगे तो जितना ये सृष्टि का चक्र है। ये योग में भी दृष्टि पात आता है। और जो वैज्ञानिक सूक्ष्म बन जाते हैं उनको भी दृष्टि पात आता है, जैसे मैं एक रक्त के बिन्दु से उस चित्रों में उसमानव का दिग्दर्शन कराता हूँ। तो हे पुत्री ! जब

योग में प्रग्रेश करता हूँ। तो जो रक्त का एक परमाणु है। जब मैं उसके गर्भ में अस्तुतियों को ले जाता हूँ। तो उसमें असंख्य चित्र मुझे दृष्टि पात आते हैं। उस एक एक परमाणु में मुझे असंख्य जन्म जन्मान्तरों के चित्र उस मानव के दृष्टि पात आते हैं। जो रक्त के बिन्दु से उस मानव का केवल चित्र ही दिखायी देता है। एक-एक परमाणु में जन्म जन्मान्तर दृष्टिपात आते हैं। एक जन्म नहीं दो नहीं महर्षि सोनभुक ऋषि तो ये कहा करते थे एक परमाणु के विभाजन करने से मुझे मानो देखो सत्रह करोड़ों जन्मों के संस्कार मेरे समीप आ रहे है। तो मेरे प्यारे हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने एक अनुसंधान नहीं किया दो नहीं किया परन्तु असंख्य प्रकार के अनुसंधान ऋषि मुनियों के मस्तिष्कों में नृत्य करता रहा।

आओ मेरे प्यारे मुझे स्मरण आता रहता है। जहाँ योगी अनेक प्रकार का अनुसंधान करते रहे है। वहाँ मेरी प्यारी माता मनदाल्सा का जीवन बेटा मुझे स्मरण है। माता मदालसा श्वेत केतु ऋषि महाराज के द्वारा अध्ययन करती थी। और यह सोमा कीर्ति ऋषि महाराज की कन्या थी श्वेति उनकी माता का नाम था इसका मनुवंश में संस्कार हुआ जब प्रथम उसके गर्भ की स्थापना हुई तो वो योग में चली गयी क्योंकि ऋषि के द्वारा योगाभ्यास करती थी जब वो योग में परिणित हो गयी तो विचारने लगी कि मेरे गर्भ में कौन-सी संस्कारी ऐसी आत्मा आयी है। जिसका जीवन से विशेष सम्बन्ध रहा तो कौन से जन्म का सम्बन्ध है। तो मुनिवरो तुम्हें प्रतीत होगा प्रव्हाण का जन्म सबसे प्रथम है। तो माता जब योग में परमाणु के ऊपर अनुसंधान करने लगी जो गर्भ में स्थित है। तो उसमें उनकी श्रुति चली गयी। योग में मनस्तव प्राणस्तव चले गये प्रवृत्ति चली गयी तो मदालसा कहती है। अपनेपति से भी कहा था उन्होंने गुरु से भी कहा था उन्होंने कहा जो मेरे गर्भ में आत्मा आयी है। ये मेरे सौ वे जन्म का एक बाल्य शिशु के परमाणुओं

से सम्बन्ध हुआ है। मेरे प्यारे वह आत्मा प्रव्हाण ऋषि के रूप में माता के गर्भ में प्रकट हुआ था। तो मेरे प्यारे यहाँ बहुत अनुसन्धान किया गया है। पुरातन काल महा पुरुषों का, ऋषि मुनियों का काल रहा जब अनुसन्धान किया जाता है। विचार विनमय किया जाता है।

आओ मेरे प्यारे आज का विचार विनिमय क्या यहाँ परमाणुओं से सृष्टि का दृष्टिपात करने वाले ऋषि हुए हैं ये बेटा आज का वाक्य हमारा क्या कह रहा है कि बेटा जैसे ब्रह्माण्ड की गाथा पृथ्वी गा रही हैं ऐसे ही वाणी ब्रह्म की गाथा गा रही है। यहाँ माता का पुत्र माता की गाथा गा रहा है और गाता गाता मुनिवरो इस संसार की आभाओं में परिणित हो जाता है। ये है बेटा आज का वाक्य आज के वाक्य का उच्चारण करने का अभिप्राय क्या कि हमारे यहाँ बेटा प्रत्येक वस्तु अनुसन्धानमय कहलाती है विज्ञानमय कहलाती है क्योंकि बिना विज्ञान के और आध्यात्मिकवाद के हम अपना कल्याण नहीं कर सकते हैं। क्योंकि हमारा जीवन आध्यात्मिकवादी होना चाहिये। और आध्यात्मिकवाद का जो विज्ञान है....अश्रोत्य....।

२१-११-८१
योग आश्रम मलपुरा, मु.नगर
समय प्रातः ८.३०

"संसार एक यज्ञशाला है"

देखो मुनिवरो !

आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा कि आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है जिस पवित्र वेद वाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान किया जाता है। क्योंकि वह परमपिता परमात्मा अनन्तमयी हैं और उसका ज्ञान विज्ञान भी अनन्तमयी माना गया है। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस ज्ञान और विज्ञान की महिमा का गुणगान गाया जाता है, जिस ज्ञान और विज्ञान की महानता प्रत्येक मानवीय हृदय में समाहित रहती है और वह हृदय अगमता को प्राप्त होते रहे हैं।

हमारे वेद का एक–एक मन्त्र हमें उर्ध्वा की उड़ान उड़ाता रहता है और नाना रूपों में हमें दृष्टिपात आता रहता है। आज मैं तुम्हें विशेषता में नहीं ले जा रहा हूँ केवल यह कि हमारा वेद मन्त्र क्या कहता है और उसका जो ज्ञान और विज्ञान है वह कितना अनुपम है और वह कितना विचारणीय रहा है। हमारे यहाँ नाना ऋषिवर अपनी-अपनी स्थलियों पर विद्यमान हो करके नाना प्रकार का विचार विनिमय करते रहे हैं और परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान के ऊपर प्रायः अपने–अपने विचार व्यक्त करते रहते हैं। मेरे प्यारे ! मानव के जीवन का एक मूल लक्ष्य माना गया है, प्रत्येक मानव के हृदय में यह आकांक्षा बनी रहती है कि मैं ब्रह्माण्ड को जानने वाला बनूँ, अणु और परमाणुओं

में मैं रत्त हो जाऊँ। इस प्रकार का विश्लेषण, इस प्रकार की विचार धारायें प्रायः परम्परागतों से मानव के हृदय में रही हैं। जब भी वह एकान्त स्थली में विद्यमान हुए हैं तो नाना विचारों में रत्त हो गये हैं। चाहे वह विद्यालय हो, चाहे दार्शनिक प्रतिभा हो परन्तु उसमें ही रत्त रहे हैं। तो आज का हमारा वेदमन्त्र कहता है कि संसार के ऊपर मनन चिन्तन करते रहें क्योंकि हमारे यहाँ दार्शनिक जन एक-एक वेद मन्त्र पर विवेचना करना प्रारम्भ करते हैं तो सर्वत्र ब्रह्माण्ड को मापने लगते हैं, मानों एक–एक अणु परमाणु को मापने लगते हैं।

यह संसार क्या है ?

आज मैं तुम्हें विशेषता में तो नहीं ले जा रहा हूँ, आज मैं तुम्हें उसी क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ जहाँ ऋषि मुनि यह कहते हैं कि यह संसार क्या है ? इस संसार के सम्बन्ध में अपना नाना मनत्व्य देते रहे हैं। किसी ने संसार को कल्प–वृक्ष के रूप में परिणत किया है, किन्हीं ने कहा है यह संसार एक विचारशाला है, किसी ने कहा यह संसार देने लेने की व्यापारशाला है परन्तु किन्हीं आचार्यों ने कहा, नहीं **यह जो संसार है, एक प्रकार की यज्ञशाला है।** यज्ञशाला, इसलिए क्योंकि प्रत्येक मानव यहाँ सुक्रियाकलाप करने के लिये आया है, यहाँ सुक्रियाओं में रत्त रहने के लिये आया है और विचारता रहता है कि मेरा जीवन सु–बन जाए, पवित्रता में परिणत हो जाए। यह मानवीयता की विचित्रत्व एक धारा है। दार्शनिक यह कहता है कि जहाँ यज्ञशाला है वहाँ वह मृत्यु लोक की आभा में रत्त रहा है। यह मृत्युलोक है जहाँ प्रत्येक मानव मृत्यु से विजय होने के लिये आया है। मृत्यु का अभिप्रायः यह है कि हम मृत्यु को जानकर के उसके लोक में प्रवेश हो जाए। दार्शनिक यह कहता है कि यह संसार जहाँ यज्ञशाला में वर्णित रहा है वही यज्ञशाला सदैव अपनी आभा में रत्त रही है।

कन्या याग

विचार आता है जब हमारे यहाँ यज्ञशाला का वर्णन आया तो एक दूसरे में घटित होने वाला यह जगत है। यहाँ यजमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान होकर नाना प्रकार के यज्ञों में परिणत रहा है। मुनिवरो देखो, यहाँ नाना प्रकार के यज्ञों का चयन हमारे वैदिक साहित्य में आता रहता है जैसे हमारे यहाँ कन्या याग का वर्णन है। कन्या याग के सम्बन्ध में महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने, अपने में एक दार्शनिक रूप का वर्णन कर यह कहा कि संसार एक यज्ञशाला है। यहाँ कन्या याग का भी वर्णन होता रहता है। वेद के आचार्यों ने कहा है कि कन्या पहले देवलोक में रहती है। उसके पश्चात् वह पितर लोक में रहती है और उसके पश्चात् वह पतिलोक को प्राप्त होकर, उसे याग करने का अधिकार है। यहाँ याज्ञवल्क्य महाराज ने एक वेद मन्त्र का आश्रय दिया:

''कन्या भूतम् ब्रह्मणः ब्रतम् पितर लोकम् ब्रहे
अरुणम् ब्रहें कृतम् पतिलोकम् भूयशतम् ब्रहे।''

वेद का मन्त्र यह कहता है—याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने इसकी विवेचना करते हुए कहा है कि कन्या पहले देवलोक में रहती है उसके पश्चात् पितर लोक में रहती है। पितर लोक को प्राप्त होने के पश्चात् पति लोक को प्राप्त होकर उसे याग करने का अधिकार प्राप्त होता है। यहाँ याग की सीमा को उन्होंने बद्ध किया है। इसमें यहाँ नाना प्रकार के प्रसंग आते रहते हैं। ब्रह्मचारी को अपने में याग करने का अधिकार है। वह गारपथ्य नाम की अग्नि की पूजा करता है और याग करता है जिससे उसका ज्ञान बलवती होता है और वे मस्तिष्क में जो नाना प्रकार की गृन्थियां हैं जटा पाठ, घन पाठ, माला पाठ में गान गाने से, उनके अन्तर्हृदय की गृन्थियों में स्पष्टीकरण आ जाता

है। और वह अपने में स्वीकार करता है कि मैं प्रकाश के मार्ग पर जाना चाहता हूँ, प्रकाश में रत्त रहना चाहता हूँ।

कन्या पहले देवलोक में रहती है। जो उसका बाल्यकाल होता है वह कन्या का देवयान होता है, देवलोक होता है और देवता उसकी रक्षा करने को तत्पर होते हैं। देवताओं से भी आभूतम् जब पितर-लोक को प्राप्त होती है, ''पितरश्चम् ब्रह्मा पितरश्चम् ब्रह्मे कृतम्'' तब कन्या की रक्षा करने वाला पितर जन है। वह पितर लोक कहलाता है जब माता के संरक्षण में, अपने अर्न्तहृदय में हवि देने वाली कन्या पितर को प्राप्त होती रही है। हमारे यहाँ पितरों के बहुत से पर्यायवाची शब्द है। माता भी पितर है, पिता भी पितर है, आचार्य भी पितर कहलाता हैं। यहाँ पितरों की विवेचना करते हुए कहा है माता पितर इसलिए कि वह अपने गर्भस्थल में पितर बनकरके शिक्षा प्रदान करती है। पितर का अर्थ है जो रक्षक होता है, **रक्षा करने वाले को ही पितर कहा जाता है।** माता पितर है और पिता इसलिए पितर वह भी रक्षार्थी बना हुआ है, रक्षा कर रहा है। रक्षा करते हुए, उसे शिक्षा देता है। आचार्य इसलिए पितर हैं, क्योंकि आचार्य उसे नाना प्रकार की विद्याओं में परिणत कर देता है।

'पितरश्चम् ब्रह्मा पितरश्चम् बह्मे कृतम्'

वह पितर कहलाते हैं, वह पितर–जन आचार्य जब कन्या को शिक्षा प्रदान करता है। 'दिव्याम्' गुरु और शिष्य के रूप में विद्यमान होकर के नाना प्रसंगों में चले जाते हैं। जैसे एक समय माता मदालसा पितर लोक में अपना अध्ययन कर रही थी, तो अध्ययन करके, अपने आचार्य से उसने यह प्रश्न किया, प्रभु यदि मैं बुदिमत्ता को प्राप्त हो गयी तो मैं इस संसार में गृहों में प्रवेश करना नहीं चाहूँगी। वह वेद विद्या का अध्ययन करती रही तथा बहुत काल पश्चात् उसे कई वेदमन्त्रों

में पितर याग की महिमा का, पुत्र याग की महिमा का वर्णन स्मरण किया, तो आचार्य से बोली, मेरी इच्छा यह बन रही है यदि भगवन् जब पितर लोक से कुलज्यों को प्राप्त होऊँगी तो मेरी इच्छा है कि मेरे गर्भ से जब–पुत्र-पुत्री का जन्म हो तो वह इस संसार के वैभव में न परिणत हो, वह ब्रह्मज्ञानी बने और ब्रह्मवेता बनकर के महानता को गमन कराता रहे। ऐसा मानो कि वह सहस्त्रों राजाओं के समान होता है जो ब्रह्मवेता होता, ब्रह्मनिष्ठ होता है और ब्रह्म की प्रतिभा में रत्त रहने वाला होता है। जहाँ कन्या अपने में अध्ययन कर रही है दर्शनों की आभा में रत्त हो रही है, वह पितर यान–पितर लोक कहलाता है। कन्या उसके पश्चात् पितरों से उपराम होकर पतिलोक को प्राप्त होती है। पति लोक में जाने के पश्चात् उसे याग करने का अधिकार है। वेद मन्त्र कहता है

'तदरस्तम् ब्रह्मों वरणम् पुत्रों समन् ब्रवम् कृतम् देवत्वाम् यागा।

यहाँ पुत्र याग करने का अधिकार उस कन्या को है जो "पुत्रों समम् ब्रह्मा ब्रवम्" अर्थात जब पति लोक को प्राप्त हो जाए। यहाँ सन्तान की उत्पत्ति का नामोंकरण याग माना गया है। हमारे दर्शनों के मीमांसकार मीमांसा करते हुए कहते हैं कि प्रत्येक क्रिया का नाम याग माना गया है। **याग का अभिप्रायः हूत करना। याग का अभिप्राय है अपने में महानता को प्राप्त होना।** वहाँ पति लोक को प्राप्त होकर उसे याग करना हैं याग पुत्रेष्टी याग में परिणत हो जाता है। **सन्तान को जन्म देना ही याग है।** दर्शनाचार्य ने कहा है कि इसे कन्या याग कहते है। जैसे वाजपयी याग है, अग्निष्टोम याग है और भी नाना प्रकार के याग हैं इनमें मानव परिणत रहा है। माता याग कर रही है। याग में वेदमन्त्र यहाँ तक कहता है कि माता, अपने गर्भ के अन्तरात्मा से वार्ता प्रकट कर रही है। 'सम्भवे ब्रहे।' हे ! आत्मा कैसे मेरे गर्भ

में तेरा वास हुआ है मैं जानना चाहती हूँ। माता यह कहती है तो माता शिक्षा देती है तुझे ब्रह्मवेता बनाना है, ब्रह्मनिष्ट बनकर तुझे प्रकृति के क्षेत्र में ब्रह्म को ही दृष्टिपात करना है। इस प्रकार की शिक्षा माता देती रहती है तो माता का यह जीवन महानता को प्राप्त होता है। इसको कन्या याग कहते हैं। **कन्या याग ही पुत्रेष्टि याग में परिवर्तित होता रहा है।** वेद के आचार्यो ने जहाँ कहा है यह पुत्रेष्टि याग है वही वाजपेयी याग का वर्णन अथवा धनुर्याग का वर्णन भी आता रहा है। धनुर्याग किसे कहते हैं—आचार्य और जब ब्रह्मचारी एक स्थली पर विद्यमान हो धनुर्विद्या अपनो को प्रदान करता है तो धनुर्विद्यायें अपने में महानता को प्राप्त होती हैं। मुझे वह काल स्मरण आ रहा है जिसकाल में माता अपने पुत्रों को लेकर नदी के तट पर अपने ब्रह्मचारियों को, पुत्रों को अस्त्रशस्त्रों की विद्या प्रदान कराती रहती थी। वह धनुर्याग कहलाता है जिसे मेरी प्यारी माता अपने यशोबल से उसे ग्रहण कराती रही है क्योंकि शिक्षा देने वाली माता भिन्न-भिन्न प्रकार की शिक्षा देती रही है। **द्वापर के काल में माता गंगा, अपने पुत्र भीष्म को, देववृत्त को धनुर्याग की विद्या प्रदान करती रहती,** इसलिए उनका धनुर्याग बड़ी सफलता को प्राप्त होता रहा है और **आचार्य उस विद्या को नहीं प्रदान कर सकता जो माता देती रही है** 'मताम् ब्रह्मे'. त्रेता के काल में, सीता महर्षि बाल्मीकि के आश्रम में विद्यमान होकर धनुर्विद्या प्रदान करती रहती थी। धनुर्विद्या का अध्ययन कराती रहती थी, वेद का अध्ययन कराती थी। इसलिये मेरी माताओं का धनुर्याग पर अनुशासन होना चाहिए जिससे उनकी पुत्र-पुत्रियों में एक महानता की प्रतिभा आ जाए और यह राष्ट्र और समाज उन्नति को प्राप्त हो जाए।

विचार यह, इतिहास के पृष्ट है, आज, मेरी प्यारी मातायें बाल्य को धनुर्याग में परिणत कर उसे आचार्य को प्रदान कर देती और वे

कहती, हे आचार्यजनों मेरे बाल्य को धनुर्याग में पारांगत करो, जिससे हमारा समाज ऊँचा बने और धनुर्याग की रक्षा हो। **वेद की रक्षा उस काल में होती है जिस काल में वेद के मन्त्रों को क्रियात्मकता का स्वरूप प्रदान किया जाता है** उसी के पश्चात् केवल वेद की रक्षा कर सकते हैं। केवल उद्गीत गाने वाला उद्गीत ही गाता रहता है जब याग होता है।

मुझे स्मरण आता है बेटा माता अरुणदति का जीवन तुम्हें स्मरण होगा कि वह ब्रह्मचारियों को विद्यालय में धनुर्याग की शिक्षा देती रहती। वे आचार्य, अपने पति महर्षि वशिष्ठ से कहती इन्हें ब्रह्मज्ञान भी प्रदान करों। ब्रह्मज्ञान और धनुर्याग दोनों एक दूसरे के पूरक कहलाते हैं। नाना प्रकार की प्रायः विद्यायों की शिक्षा प्रायः हमारे यहाँ उदगीत गा मेरी पुत्री को प्रदान की जाती। **मुझे स्मरण आता रहता है महर्षि भारद्वाज मुनि के आश्रम में भी और महर्षि कपिल मुनि के आश्रम में भी कन्याओं को शिक्षा प्रदान की जाती और इस प्रकार की विद्यायें भी प्रदान की जाती।** जिन विद्याओं से माता अपने गर्भ स्थल में अपने पुत्र को ऊँचा बनाती रही है। **जिस देवता की हमें पूजा करनी है, उसी देवता की पूजा करके माता अपने गर्भ स्थल में उसी देवता के गुणों को भरण करती रही है। उसी गुणों वाले गुणों का ध्यान करते हुए पुत्रों को जन्म देती रही है।** हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस विद्या की प्रतिभा प्रायः मानव मस्तिष्क में रही है।

हमारे यहाँ जैसे दीपावली मानो दीपराग की प्रतिभा आती रहती है उसी प्रकार मल्हार राग की भी प्रतिभा आती रही है। प्रायः दो प्रकार के रागों का वर्णन हमारे वैदिक साहित्य में आता रहा है और उसके ऊपर मानव परम्परागतों से अन्वेषण करता रहा है यह दोनों प्रकार की जो विद्यायें है जिसे हमारे यहाँ **दीपावली दीपमालिका** बन गान

गाने लगती है। **मानव का जो प्राण है उस प्राण और अपान को, सामान्तया व्यान को जो खेचरी मुद्रा द्वारा मुद्रित करता है तो दीपमालिका बन जाती है।** इसी प्रकार शीतलीप्राणायाम में जैसे **उदान और समान दोनों का समन्वय कराता हुआ प्राण की उसमें पुट लगाकर शीतली प्राणायाम करता है, तो शीतली प्राणायाम का वायुमण्डल में जो शीतल 'जलम् प्राणम् व्रहे वृता' जल के परमाणु हैं वे उद्बुद्ध हो जाते हैं और वे वृष्टि के रूप में, गान के रूप में परिवर्तित होते रहते हैं। यह याग, मन और प्राण दोनों की साधना हैं यह शारीरिक, देखो ब्रह्मचर्य की आभा में साधना की जाती है।** उस समय यह सर्वत्र विद्या उद्बुद्ध हो जाती है, जिसको देखो क्रियात्मकता में परिणत किया जाता है। महर्षियों ने देखो इसको इस प्रकार उद्गीत गाया है। त्रेता के काल में माता अरूणदति इस विद्या को जानती थी। महर्षि वशिष्ठ मुनिमहाराज भी इसे जानते थे। सतोयुग के काल में तो नाना ऋषि इस प्रकार के हुए है। नाना ऋषि द्वापर के काल में भी रहे हैं। जैसे महर्षि दुर्वासा मुनि अपने में जानने लगते थे वे इस विद्या को जानते थे। **जो प्राण को अपान में, अपान को उदान में, उदान को समान में, समान को व्यान में पुट लगाना जानता है वह सर्वत्र विद्याओं में पारांगत हो जाता है।** वह इस विद्या में स्त्त हो जाता है। **यह याग माना गया है।**

धनुर्याग

हमारे यहाँ कन्या याग का जहाँ वर्णन आता है वही धनुर्याग का वर्णन भी है। धनुर्याग की विद्याओं में सर्वत्र जानकारी करायी जाती है। मुझे स्मरण आता रहता है महर्षि भारद्वाज मुनि के यहाँ धनुर्याग का प्रायः चयन होता रहा है। महर्षि विश्वामित्र के आश्रम में–दण्डक वनों–में भी यह धनुर्विद्या का चयन होता रहा है। मैंने तुम्हें कई काल

में वर्णन कराया आज उसकी पुनःरुक्ति किये देता हूँ। **महर्षि विश्वामित्र को वशिष्ठ ने कहा, दण्डक वनों में याग करो।** उन्होंने कहा बहुत प्रियतम। महर्षि विश्वामित्र ने दण्डक वनों में एक धनुर्याग किया और धनुर्याग किया तो 'यागम् ब्रहे'। वह जब याग में परिणत हो गये तो नाना ब्रह्मचारी उस वाक्य को पान करने आ गये। राजकुमारों को लाकर धनुर्याग को पूर्ण कराया। **यह धनुर्विद्या क्या है ? अस्त्र-शास्त्रों की विद्या है, अणु परमाणुओं की पवित्र विद्या है।** जो महर्षि भारद्वाज के आश्रम में भी थी। विश्वामित्र इस विद्या को जानते थे और ब्रह्मचारियों को इसकी शिक्षा देते थे।

विचार विनिमय क्या ? वेद का ऋषि कहता है **कि यह संसार एक प्रकार की यज्ञशाला है, इसमें प्रत्येक मानव याग कर्म करने के लिए आया है, 'यागम् भवतम् यागम् ब्रहे' याग ही हमारा जीवन है, याग करना ही हमारा कर्त्तव्य है इसलिये यह संसार जो परमपिता परमात्मा ने रचा है यह एक प्रकार की यज्ञशाला है, यहाँ प्रत्येक मानव याग कर्म करने के लिये आया है।** कैसा प्यारा याग है ? कहीं मेरी प्यारी मातायें पुत्रेष्टि याग करती रही हैं। **पुत्रेष्टि याग किसे कहते हैं ? पुत्र को उत्पन्न करने वाली जो माता अपने पुत्र को गर्भ में महान् बना देती है वही पुत्र याग कहलाता है।**

'यागम् ब्रह्मा वर्णस्थ सम्भवे वर्णम् सम्वते'

माता मदालसा का पुत्रेष्टि याग

मुनिवरो तुम्हें पुरातन काल में वर्णन किया था आज भी मुझे स्मरण आ रहा है। मेरे प्यारे, एक समय **माता मदालसा** अपने में विचार विनिमय कर रही थी। वह उद्गीत गा रही थी कि मैं पुत्रेष्टि याग करना चाहती हूँ। **मनुवंश में उनका संस्कार हुआ।** जब संस्कार हो गया तो उन्होंने

अपने पति देव से कहा, हे प्रभु ! मैं पुत्रेष्टि याग में रत्त रहना चाहती हूँ। उन्होंने कहा बहुत प्रियतम्। मदालसा ने कहा कि मैंने संस्कार से पूर्व आपसे संकल्प लिया था कि हमारी सन्तान को पाँच वर्ष तक मेरी शिक्षा होगी, पाँच वर्ष पश्चात् तुम्हारी शिक्षा होनी चाहिए। मनु वंश के राजा ने यह वाक्य स्वीकार कर लिया। स्वीकार करने के पश्चात् माता मदालसा के गर्भ स्थल में कुछ समय के पश्चात् शिशु का प्रवेश हो गया तो माता अपने में विचार रही थी कि हे बाल्य, हे आत्मा, तेरी रक्षा करने वाले तो देवता जन है, मैंने यह वैदिक साहित्य में अध्ययन किया कि माता के गर्भ स्थल में जब शिशु का प्रवेश हो जाता है तो रक्षा करने वाले सर्वत्र देवता होते हैं। वह देवता कितने भव्य हैं। कोई देवता अमृत दे रहा है, कोई देवता प्रकाश दे रहा है, कोई देवता गुरुत्व दे रहा है, कोई देवता आपोमयी ज्योति दे रहा है कोई देवता तेजोमयी ज्योति दे रहा है कोई देवता गति दे रहा है। कोई देवता बनकर उसमें वह गमन कर रहा है। देवताओं की देवी (मदालसा) यह उद्गीत गा रही है। कि हे ! आत्मा हे ! शिशु, तेरी रक्षा माता नहीं कर सकती। माता तो उस गृह में वास करती हैं जहाँ तू पनप रहा है। वह जड़वत् कहलाता हैं। प्रभु, देवताओं की सहायता लेकर निर्माण करता है। माता के कैसे भव्य विचार हैं कैसी भव्य उसकी कल्पना है। अपने बाल्यों को अपनेमन की वार्त्ता को वर्णन करा रही है। तुम्हारी माता तो परमपिता परमात्मा है, मैं तो अमृतमान् हूँ। मैं तो केवल निमित्त मात्र कहलाती हूँ। **देवता और माता वह परमपिता परमात्मा है।** यह जब मेरे गर्भ में प्रवेश कर रहा है तो मैं कोई इसकी रक्षा नहीं कर सकती, क्योंकि मैं तो उस प्रभु के, उस माता के गुण ही गाँ सकती हूँ जो सबकी माता हैं, परम देव है। वह माता (मदालसा) कहती है, हे ! बाल्य चन्द्रमा तुझे अमृत दे रहा है वह देवता है वह द्यौ से अमृत लाता है और तुझे प्रकाश में लाने का प्रयास करता है। चन्द्रमा समुन्द्रों से परमाणु को

लाता है, वह तुझे अमृत दे रहा है। हे देवताम् मानों, अग्नि तुझे उष्ण बना रही है और पृथ्वी तुझे गुरुत्व की आभा प्रदान कर रही है।

'अमृतम भवताम् ब्रह्मे'

आपोमयी में तो तेरा ओढ़न रहता है। हे ! आत्मा, हे ! शिशु जिसमें तू वास करता है वही आपों कहलाता है। आपो ही पासे बने हुए है, वही तेरा ओढ़न बना हुआ है, वही तेरा बिछौना बना हुआ है तू उसी में वास कर रहा है **इसीलिए यजमान यज्ञशाला में विराजमान होकर तीन आचमन करता है, कहता है कि 'आतम् ब्रंहे।'** मानो तू श्री को देने वाला है, तू अमृत है, तू ही तो मेरे में वास कर रहा है। तू ही आपों मेरा ओढ़न है, तू ही मेरा बिछौना, तू ही मेरे पासे बनकर है उसमें ही मैं पनप रहा हूँ, उसी में मेरी प्रतिभा रहती है। वह परमपिता परमात्मा विज्ञान में रत्त रहने वाला हैं। वैदिक ऋषि कहता है, कि माता मदालसा ने कहा है, हे आत्मा !

'वेदम् ब्रह्मा वेद प्रवाह कृतम् देवतम् प्रकाश'

वही तो प्रकाश को देने वाला है, वह प्रकाश में रत्त हो रहा है। माता मदालसा यह प्रार्थना कर रही है, आत्मा तू जब संसार में इस पृथ्वी माता वसुन्धरा के गर्भ में आना तो ब्रह्मवेता बन करके आना। मेरे गर्भ से ब्रह्मवेता बनकर आओ। माता मदालसा के गर्भ से कुछ समय पश्चात् शिशु का जन्म हुआ। वह बाल्य जब पृथ्वी की गोद में आ गया तो माता मदालसा कहती, हे ! माता, तू अपने शिशु को अपने में धारण कर, अब तक मैंने इसको अपने गर्भ में धारण किया है और देवताओं की उपासना की और देवताओं ने इसकी रक्षा की हैं अब तेरा कर्त्तव्य है कि इसे अपने में धारण कर। पृथ्वी के गर्भ में आकर, इसी में रत्त रहकर कोई वैज्ञानिक बन जाता हैं। माता याग कर रही

है, अपने में विज्ञानशाला में विद्यमान हो करके बालक को ब्रह्म विद्या प्रदान कर रही है। **हे ! आत्मा, हे ! शिशु यह ब्रह्म क्या है ? वही ब्रह्म है जो तेरी रक्षा कर रहा है, वही ब्रह्म है जो तुझे अनुशासन में ला रहा है। वही ब्रह्म है जो उत्पत्ति के मूल में था, जो तेरे अंग संग रहने वाला है, मानों देखो सर्वज्ञ है, सर्व शक्तिमान है, महानता में रमण करने वाला वही तो तेरा प्रभु है, उसी की तुझे उपासना करनी है।** तुझे संसार के क्षेत्र में प्रवेश नहीं होना है। माता इस प्रकार ऊर्ध्वा में गति करने लगती है तो वह ऊर्ध्वा जो 'साधम ब्रहे' तो वह ब्रह्मवेता बाल्य को पाँच वर्ष की आयु तक ऊर्ध्ववेता बना देती है। माता ने जब पुत्रों को उर्ध्ववेता बनाया तो तीन पुत्र ऊर्ध्ववेता बन गये। तीन पुत्र जब ऊर्ध्ववेता बन गये, वे ब्रह्म की आभा में रमण करते हुए ऊर्ध्वा में गान गाने लगे। ब्रह्म की आभा में निहित रहे। ब्रह्म की आभा में रमण करते हुए

'ब्रह्म वर्त्ता अश्वतम् वाचस्वतम् ब्रह्मः।'

ब्रह्म के संरक्षण में रमण करते हुए पाँच वर्ष की आयु में ब्रह्मवेता बनकर भयंकर वनों में तपस्या करने चले गये। **ब्रह्मज्ञान होना उसी काल में सार्थक होता है, जब कि ब्रह्म का बोध हो। सर्वज्ञ हो तपस्वी तपों में निष्ट बन जाए और परमपिता-परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान में रत्त हो जाये। परमात्मा की आभा में निहित होकर, अपनेपन में ही वह दर्शन करने लगे।** वह बाल्यम ब्रहे। जब माता के तीन पुत्र ब्रह्मवेता बन गये, और ऊर्ध्वा को प्राप्त हो गये। एक समय जब चतुर्थ शिशु माता मदालसा के गर्भ में प्रवेश हआ तो उस समय राजा ने, **व्रेतु राजा ने कहा,** हे देवी, यह राज्य कैसे चलेगा ? हमारा **मनुवंश** का बड़ा विचित्र राज्य चला आ रहा है, यह राज्य कैसे चलेगा जब यह सब सन्यास को प्राप्त हो जायेगे। तो माता मदालसा ने कहा हे

राजन् ! अब का यह पुत्र राजा बन जायेगा, परन्तु तब मैं इसके पश्चात् संसार में नहीं रहना चाहूंगी। राजा तो मोन हो गये, माता मदालसा ने विचार किया कि इस आत्मा को कोई शिक्षा नहीं देनी है। मेरे प्यारे पुत्र माता के गर्भ में पनप रहा है। राष्ट्रीय विचार आ रहे हैं। राष्ट्रीय विचार आ करके, नाना प्रकार की तरंगों में वह बाल्य पनप रहा है। जब माता के गर्भ से पृथक हुआ तो राष्ट्रीय विचारों में पनपने लगा। पनपने के पश्चात् माता आगे सन्तान को जन्म देने के लिए संकल्प बध्य हो गयी। आचार्य के समक्ष उसने एक संकल्प किया था, कि प्रभु यदि मैं गृह में प्रवेश हो गयी, तो ब्रह्मवेता सन्तान को जन्म दूगी। यदि सन्तान ब्रह्मवेता नही होगी और मेरे पति ने मेरी वार्त्ता का उलंघन किया तो उसके पश्चात् एक सन्तान को जन्म देकर मैं परलोक को चली जाऊगी। यह माता मदालसा ने आचार्य के समीप संकल्प किया था। यही उसने राजा से कहा। भगवान् जब यह बाल्य १२ वर्ष का ब्रह्मचारी हो जायेगा, तो उस समय मैं अपने शरीर को त्याग दूंगी।

माता मदालसा का शरीर त्यागना

कुछ समय के पश्चात् वह बाल्य जब बारह वर्ष का हो गया। बारह वर्ष का हो जाने के पश्चात् एक आसन पर वह बाल्य है, एक पर अपने राजा को, माता मदालसा ने कहा, भगवन् विराजिये। अब मैं अपने परलोक को जा रही हूँ जहाँ से मेरा आना हुआ है, भगवान् अब मैं वही जाना चाहती हूँ। राजा ने कहा, हे देवी आप जा रही हैं, राष्ट्र का क्या बनेगा ? उन्होंने कहा, भगवन् मैं नहीं जानती राष्ट्र का क्या बनेगा। राजा ने कहा हमारा क्या बनेगा ? उन्होंने (मदालसा) कहा प्रभु, हे राजन्, जो प्रतिज्ञा मैंने की है उस संकल्प को नहीं त्यागूंगी। यह संसार कहाँ जाता है, संसार की क्या गति होती है इसे मैं नहीं जान पायी। परन्तु मेरा एक ही संकल्प है, जो मैंने आचार्य के चरणों

में विद्यमान होकर के संकल्प किया है, वह संकल्प पूर्ण हो गया है और मैं, मेरे उस संकल्प के आधार पर शरीर त्यागना चाहती हूँ। उन्होंने प्राणायाम किया। प्राण, अपान और उदान की पुट लगाकर समान को एकाग्र करती हुई उन्होंने गायत्री छन्दों का पठन-पाठन करते हुए और साथ में वर्णियों का उन्होंने वर्णन करते हुए प्राण का अघ्रित किया, निरोध करने के पश्चात्, कुम्भक, रेचक, प्राणायाम् की गतियों में लाकर उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया और यह कहा,

'देवम् ब्रह्मा, देवम् ब्रह्मे, देवम् गायत्री, देव सम्भवा देवता ब्रहे।'

और शरीर त्याग दिया। 'राजम् ब्रहे' शरीर त्यागने से पूर्व अपने पुत्र के कण्ठ में एक वार्त्ता नृत्य करा दी थी कि यह संसार निसार है। यह उद्‌गीत गाते हुए अपने शरीर को त्याग दिया। राजा बड़े व्याकुल हुए। परन्तु यह 'पुत्रम् भवेत् प्राणम् ब्रहे' पुत्र और पतिदेव ने उनका संस्कार किया। संस्कार के पश्चात् अपने वृत्तियों में उन्होंने पुत्र को राज्य देकर स्वयं भयंकर वनों में चले गये। राजा तपस्या के लिए तपश्चर में भी जाकर, भयंकर वन में, कुछ समय तपस्या करके अपने शरीर का प्राणान्त कर दिया।

ऋषि-मुनियों की मर्यादाओं एवम् परम्पराओं की महत्ता

वह राजा राज्य करता रहा। वह राष्ट्र में इतना तल्लीन हो गया कि राष्ट्र को नहीं त्याग रहा था। उन्होंने ऋषि–मुनियों की मर्यादा अथवा परम्परा जो थी उन परम्पराओं का उल्लघन किया। उल्लघन करने के पश्चात् भी वह राष्ट्र को नहीं त्याग रहा था। उनका गृहस्थ आश्रम सम्पन्न हो गया और वानप्रस्थ भी उसी स्थली पर चला गया और वे सन्यास स्थलियों में परिणत हो गये। मेरे प्यारे त्राही–त्राही हो गयी। मनु ने जो राष्ट्र का निर्माण किया था, राष्ट्र का तो उन्होंने

कहा था **देखो, ब्रह्मचर्य है, गृह है, गृह के पश्चात् वानप्रस्थ है उसके पश्चात् सन्यास है।** सन्यास में जाकर राजा को परमात्मा का चिन्तन करना है। राजा जब इतना त्यागी और तपस्वी हो जाता है तो वही राष्ट्र और समाज उन्नत बनाता है। जो राजा अपने चोथेपंन को भी राष्ट्र में समाप्त कर देता है वह राजा नहीं कहलाता है। मानो वह राष्ट्र नहीं कहलाता है। वह तो देखो मर्यादा का उल्लघन करना हैं। परमात्मा के क्षेत्र में अपने को, अपनी मर्यादा को नष्ट कर देना है।

ऐसा स्मरण आ रहा है मुनिवरो जब त्राही–त्राही हो गयी तो महापुरुष जो तपस्वी–मुनि थे उनमें भी त्राही–त्राही हो गयी क्योंकि राजा अपने राष्ट्र को नहीं त्याग रहा है। वे जो तीनों सन्यासी थे माता ने जो सन्यासी बनाये थे। उनके पास जाकर ऋषियों ने पुकार की 'आपाम् ब्रहे' कि तुम भी उस माता मदालसा के पुत्र हो, तुम्हारा वह राजा भी माता मदालसा का पुत्र है उस सन्यास के मार्ग पर गमन कराओ। उन्होंने इस वाक्य को स्वीकार किया। तीनों तपस्वीयों ने जाकर **राजा विभूति** से कहा, प्रभु अपने राष्ट्र को त्यागिये। त्याग कर सन्यास को प्राप्त कीजिए जिससे त्राही–त्राही समाप्त हो जाए। वह राष्ट्र को नहीं त्याग रहा था। न त्यागने का परिणाम यह हुआ कि उन्होंने स्वयं दूसरे राजा से प्रार्थना की कि इस पर आक्रमण करो। राजा पर आक्रमण किया गया और आक्रमण के पश्चात् उस राजा को कारागार में स्थित कर दिया गया। जब वह कारागार में पहुँच गये तो वह जो माता मदालसा की वर्चस्व थी जो उसने उनके कण्ठ में नृत्य की थी उस वर्चस्व को अपने सम्मुख लाये।

'संसार भूतम् वर्ण ब्रहे भूतम्'

वेद का यह शब्द कि यह संसार निसार है, इसमें कोई सार नहीं है। माता के दो शब्दों में उसके जीवन का परिवर्तन हो गया। उन्होंने

कारागार के सेवकों से कहा, जाओ, राजा से कहो कि मैं राष्ट्र को त्याग रहा हूँ मैं सन्यास को प्राप्त होना चाहता हूँ। जब यह पुकार होने लगी तो तीनों सन्यासियों ने उनके जेष्ठय पुत्र को राज्य देकर और राजा ने राष्ट्र को अपनी स्थलियों से प्रदान करते हुए सन्यास को प्राप्त हो गये। ब्रह्मज्ञान के लिए भयंकर वन में प्रभु का चिन्तन करने के लिए चले गये।

ऋषियों और दार्शनिकों का मनत्व्य

मेरे प्यारे चिन्तन करना ही मानव का कर्त्तव्य है वही मानव को महान् बनाता है। विचार विनिमय क्या ? आज तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। वैदिक ऋषियों और दार्शनिकों ने कहा है कि यह संसार एक प्रकार की यज्ञशाला है इसमें प्रत्येक मानव याग करने के लिए आया है। **जितना भी सुकर्म है वह सर्वत्र एक प्रकार का याग माना गया है।** सन्तान को जन्म देना भी एक याग है, त्याग करना भी एक याग है, जो भयंकर वनों में ब्रह्म का चिन्तन करते हैं वह भी एक याग है। मेरे पुत्रों देखों संसार यह एक प्रकार की यज्ञशाला है। इस यज्ञशाला में हम सब विद्यमान है। आओ मेरे प्यारे मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। मैं कोई व्याख्याता नहीं केवल तुम्हें परिचय देने के लिए चला आता हूँ और परिचय यह है कि हम परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाते हुए, परमपिता परमात्मा की महत्ती को जानते हुए अथवा उसकी महानता में रमण करते हुए इस संसार सागर से पार हो जाये।

विचार यह प्रारम्भ हो रहा था कि संसार एक प्रकार की यज्ञशाला है। दार्शनिक कहते हैं कि संसार एक प्रकार का कल्प वृक्ष है और यह संसार देने लेने की व्यापारशाला है। यही संसार एक प्रकार की

यज्ञशाला, यही देखो एक प्रकार की चिन्तनशाला और विज्ञानशाला है। यही हमारे यहाँ मृत्युशाला कही जाती है। यह मृत्युलोक है। लोक कहते है, जहाँ हम वास करते हैं ऋषि–मुनि कहते है प्रत्येक वाक्य पर विचार विनिमय करना हमारा कर्त्तव्य है। हम याग में परिणत होते हुए याम की महिमा को जानते हुए संसार सागर से पार हो जाए।

जीवन का उद्देश्य

आज के विचारों का मन्तव्य यह है, कि परमपिता–परमात्मा के गुणगान गाते हुए, उसकी देवत्व की महिमा को अपने में धारण करते हुए संसार–सागर से पार हो जाए। हमारे जीवन का यह उद्देश्य माना गया है। नाना प्रकार की विद्यायें वैदिक साहित्य में आती रहती है। आज मैं बेटा यदि इन विचारों का वर्णन करूं तो बहुत समय की आवश्यकता है। समय मुझे प्राप्त होता रहेगा तो मैं उन विद्याओं का वर्णन करता रहूँगा।

आज के विचारों का अभिप्रायः यह है कि वह परमपिता परमात्मा अनन्तमयी है वह सर्वज्ञ है, उसकी महिमा को अपने में धारण करने वाले महिमावादी बनते जाते है। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि हम परमपिता–परमात्मा की महिमा और उसके महान् ज्ञान विज्ञान में रत्त होते रहे। यही हमारा कर्त्तव्य है। आज का वाक्य समाप्त अब वेदों का पठन–पाठन होगा।

२१ अप्रैल, १९६०
मोदीनगर

'यज्ञो हि वै विष्णु'

४–४–८४
ग्राम पठेढ़ी
समय प्रातः ८.०० बजे

देखो मुनिवरो ! आज हम पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया; हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद वाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वह परमपिता परमात्मा यज्ञोमयी–स्वरूप माने गये हैं। क्योंकि यज्ञ ही उनका आयतन माना गया है। वह सर्वत्रता में ओत-प्रोत है। इस महामना देव की महिमा का गुणगान गाते हुए हमारी मनोनीत इच्छा रहती है कि हम अपनेपन को ऊँचा बनायें। प्रत्येक मानव परम्परागतों से उड़ान उड़ता रहा है, हम अपने जीवन को महान और पवित्र बनाना चाहते हैं, और हम उसी काल में पवित्र बना सकते हैं; हमारा जीवन महान और पवित्र बन सकता है; जब हम परमपिता परमात्मा की प्रतिभा अथवा उसके ज्ञान और विज्ञान में रत्त रहने लगें, और परमपिता परमात्मा हमें स्वीकार करें। क्योंकि प्रत्येक मानव परम्परागतों से ही ऊँची-ऊँची विचारों की उड़ाने उड़ता रहा है। ज्ञान और विज्ञान की उड़ान उड़ना मानव का स्वाभाविक गुण कहलाया गया है। क्योंकि मानव का मनस्तव सन्निधान मात्र से ही यह अपने स्वभाव की प्रतिभा का उद्घोष करता रहता

है। इसीलिये हमें एक-एक वेदमन्त्र के ऊपर विचार विनिमय करना चाहिये।

यज्ञ से ही मानव विष्णु स्वरूप बन सकता है

यज्ञो मयी विष्णु है। वेद की आख्यायिका का एक-एक शब्द कहता है कि यज्ञ विष्णु है। हमारे वैदिक साहित्य में याग के बड़े जातिक श्रवतों का वर्णन होता रहा है। मेरे प्यारे महानन्द जी यह प्रेरणा दे रहे हैं कि याग के सम्बन्ध में अपना कुछ मन्तव्य दीजिये परन्तु "यागाम ब्रह्म वाचो देवाः"

प्रत्येक मानव एक यज्ञो मयी शाला में विद्यमान रहता है। और उसी की उपासना करता हुआ यज्ञोमयी विष्णु है। क्योंकि विष्णु कहते हैं, जो पालन करने वाला है। यह सतों में रहने वाला है। जो सत्य है, वही पालन करता है। सत्य और सतोगुण में ही पालन होता रहता है। मेरी प्यारी माता जब बाल्य का पालन करती है। तो पालन सतोगुण में करती है! जब तक उसके हृदय में सतोगुण नहीं आता, सत्य में अपने को नहीं ले जाती, पालन नहीं कर सकती है। नमृता आ जाती है। उदारता आ जाती हैं। उस उदार सत्य में रत रहने से पालन की प्रवृत्तियाँ आती हैं। और वही विष्णु कहलाती है। इसीलिये जो संसार में देता है, अथवा तेजोमयी देता है, वही तो पालन कर रहा है। यज्ञोमयी विष्णु ही हमारा पालन कर रहा है। पालन की प्रवृत्तियाँ आ रही हैं।

यागों में "ब्रह्म वाचहो विज्ञान गतम् ब्रह्मवाचाः" हे विष्णु ! तू हमारा पालन कर रहा है। हमारा रक्षक है। और वह यज्ञो मयी स्वरूप मानव को बनना है। उसकी आभा में रत्त रहना यह मानवीयत्त्व की एक विचित्रता कहलाती है। जिसके ऊपर मानव न्योक्षावर करता रहता है। हमारे यहाँ परम्परागतों से ही बेटा ! भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों

का चलन होता रहा है। हमारे यहाँ अग्निष्टोम यागो का वर्णन होता रहा है। बाजपेयी यागो का वर्णन है। अजामेध, गोमेध नाना प्रकार के याग, विष्णु याग, ब्रह्मयाग भिन्न-भिन्न प्रकार के देवी याग का भी वर्णन आता है। कन्या यागों का वर्णन भी वैदिक साहित्यों में आता है। परन्तु एक एक वेद मन्त्र में यागों के बड़े विचित्र विधि विधान क्रियाओं वाला एक याग है, इसको हमारे यहाँ विष्णुयाग कहते हैं। जिसके ऊपर मानव उड़ाने उड़ता रहता है। चित्रों को दिग्दर्शन करता रहता है। तो मुनिवरो देखो विज्ञान के युग में भी वही प्रवेश करता है, जो यज्ञोमयी विष्णु को जान लेता है। वही मानव ज्ञान की पराकाष्ठा में रत्त हो जाता है, जो यज्ञोमयी विष्णु के समीप जा करके अपनी प्रतिभा में प्रतिभासित हो जाता है।

तो विचार विनिमय क्या ? हमें मुनिवरो देखो ''याज्ञाम् भवति देवाः'' मेरे प्यारे महानन्द जी अपने में मानो अपनी कल्पना कर रहे हैं कि मैं भी दो शब्दों की विवेचना कर सकूँ परन्तु देखो इस सम्बन्ध में मैंने बहुत पुरातन काल में यह कहा है कि मेरे प्यारे महानन्द जी के हृदय में एक दाह रहती है। एक अग्नि की प्रतिभा रहती है। जिससे वह अपने उदगार उद्धृत करते रहते हैं। और उनके विचारों में एक विवेचना रहती है।

उस विवेचना के साथ, मैंने भी पुरातन कालों में वेदना के सम्बन्ध में प्रगट कराया था। प्रत्येक मानव के हृदय में एक वेदना का उद्घोष होता रहता है। उस वेदना के साथ मानव क्या अपने में बनना चाहता है ? इसके ऊपर मानव अपना निर्णय स्वतः देता है। अब मेरे प्यारे महानन्द जी अपने दो विचार व्यक्त करेंगे।

महानन्द जी के उद्‌गार

ॐ जना रथम् ब्रह्म मनश्चमा देवाः यजनौ वर्णम् ब्रह्मः।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! अभी-अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अमृत मयी वृष्टि कर रहे थे। वे याग के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त कर रहे थे, और यज्ञो मयी विष्णु की विवेचना में लगे हुये थे। क्योंकि वह परमपिता परमात्मा पालन करने वाला है। परन्तु जहाँ यह हमारी आकाशवाणी जा रही है, उस स्थली पर एक याग हुआ। आज मैं अपने जो आन्तरिक विचार हैं, मैं अपने यजमान को कुछ अपनी शुभ कामना प्रकट करने आया हूँ। मेरे अन्तर्हृदय की यह विवेचना रहती है। हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे। क्योंकि "यागाम् ब्रह्मवाचाः" जिस गृह में दृव्य का सदुपयोग होता है। और यागों में उसका चलन होता है। वे गृह सौभाग्यशाली होते हैं। यजमान का सौभाग्य अखण्ड बना रहे यह सदैव हमारी कामना रहती है। उसके जीवन की प्रतिभा महानता में परिणित होती रहे।

आज मानव सत्य वाक्य कहने में असमर्थ है

आज जो युग चल रहा है। यह जो काल का परिवर्तन हो रहा है। इसके ऊपर जब मैं अपने विचारों को ले जाता हूँ। तो मेरा अन्तरात्मा यह कहता रहता है कि संसार अग्नि की वेदी पर विद्यमान हो गया है। अग्नि की वेदी, अग्नि की प्रतिभा का जन्म हो गया। प्रत्येक मानव अपने अपने विचारों में अपने को सम्प्रदाय के एक रूढ़िवाद के एक आँगन में ले जाता चला जा रहा है। राष्ट्रवाद वह जो ईश्वरीय धर्मों की विवेचना कर रहा है। उस धर्म में राजा अपनी प्रजा की रक्षा नहीं कर पा रहा है, प्रजा राजा की रक्षा नहीं कर रही है। अपनी ही रक्षा

नहीं कर रहा है। जब मैं इस संसार में भ्रमण करता हूँ। जब मैं इस संसार के बुद्धि जीवी प्राणियों के समीप पहुँचता हूँ। तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह बुद्धि जीवी ही नहीं हैं। वह किसी सत्य बात का उच्चारण करने में असमर्थ रहते हैं। जब सत्य बात उच्चारण करने में असमर्थ हैं तो उनका बुद्धि जीवी होना क्या ? मानो बुद्धि जीवी प्राणी बन गये हैं। या अपने को रूढ़िवाद में ले गये हैं। रूढ़ि ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। मानव के मस्तिष्क में विकास करना चाहता है। उद्घोष करना चाहता है। परन्तु रूढ़ियों में इतना सङ्कीर्ण बन गया है। कि अपने सत्य वादय को कहने से असमर्थ है।

द्रव्य एवम् पद की लोलुपता का दुष्प्रभाव

वह क्यों है ? केवल पद लोलुपता एक मूल कारण है। द्रव्य की लोलुपता का एक मूल कारण है। पुरातन काल में देवर्षि नारद मुनि के काल में दृव्य की लोलुपता नहीं थी परन्तु वह केवल लोक की इच्छा थी लोकेष्णा में मानो परिणित हो रहा था आधुनिक काल का जो जगत है, बुद्धि जीवी है। वह द्रव्य में ही और लोकेष्णा में ही बनना चाहता है। उसकी प्रतिष्ठा रहे या न रहे परन्तु दृव्य की लोलुपता रहनी चाहिये इस दृव्य की लोलुपता में मानो अपना हित और अहित नहीं विचार रहे हैं।

पद लोलुप राजा राष्ट्र का विनाश कर देता है

इस समय ऐसा काल है। इस समय की अवहेलना मैं नहीं कर सकता, न कोई प्राणी कर सकता है। परन्तु विचार आता रहता है। जब मैं राष्ट्रीय क्षेत्रों में प्रवेश करता हूँ। तो राजा सत्य नहीं उच्चारण कर सकता वह सत्यवादी अपने गृह में नहीं बन रहा है। पुरातन काल के राजा जब द्वितीय राष्ट्रों में प्रवेश करते थे तो वहाँ वह निष्ठा के गर्भ में सत्य और सत्य के गर्भ में निष्ठा उच्चारण करते रहते थे कि

राष्ट्र की रक्षा है। आज का जो राष्ट्रवाद है। वह न तो सत्य के गर्भ की चर्चा कर रहा है, ना मिथ्या के गर्भ की चर्चा कर रहा है। उसके समीप केवल एक पद की लोलुपता लगी हुई है। वह जो पद की लोलुपता है, मानव-मानव का भक्षण कर रही है। वह अग्नि की अग्नि में परिणित हो रहा है। जब वह वैज्ञानिकों के समीप प्रवेश करता हूँ तो वैज्ञानिकों के यहाँ द्रव्य का, विज्ञान का दुरूपयोग हो रहा है। पुरातन काल का विज्ञान, राजा रावण के राष्ट्र का वास्तव में विनाश का मूल तो वह ही बना। द्वापर के काल के विज्ञान का मूल ही विनाश बना।

स्वार्थपरता के कारण विज्ञान का दुरूपयोग

देखो यह राजाओं की बुद्धि की असफलता नहीं है। वैज्ञानिक जन स्वार्थपरता में आकार के और वैज्ञानिकों के यहाँ जब राजा स्वार्थपरता में आ जाता है तो विज्ञान का दुरूपयोग हो जाता है। और विज्ञान के दुरूपयोग होने पर मेरे पूज्य पाद गुरुदेव ने बहुत पुरा तन काल हुआ जब उन्होंने विज्ञान की चर्चाएँ की थीं। उन्होंने महर्षि भारद्वाज मुनि की चर्चायें कीं और विज्ञान के दुरूपयोग होने से उन्होंने भिन्न-भिन्न प्रकार की वार्ताएँ प्रकट कीं परन्तु देखो आधुनिक जगत उससे भी अधिक विज्ञान का दुरूपयोग कर रहा है। विज्ञान का दुरूपयोग हो रहा है।

चरित्र की हीनता से राष्ट्र में अग्निकाण्ड होते हैं और अन्धकार छा जाता है।

जहाँ मेरी पुत्रियों के रक्त होते हों वहाँ ऋषि मुनियों का चरित्र आना चाहिये। जब ऋषि मुनियों का चरित्र नहीं आता, मेरी पुत्रियों के रक्त आते हैं। मेरी पुत्रियाँ अपने को हीनता में दृष्टिपात करके प्रसन्न हो रही हैं। मानव पुत्रियों के चित्रों का नग्न करता हुआ अपने में दृष्टिपात् कर रहा है। परन्तु प्रश्न हो रहा है।

राजा और विज्ञान की प्रतिभा यह दोनों ही अवहेलना ग्रस्त हो गयी हैं। जब यह विचार आता है कि इसका बनेगा क्या ? इसका परिणाम क्या होगा ? मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से बहुत पुरातन काल में इस प्रकार के संसार के लक्षणों को जब चर्चाएँ की तो पूज्यपाद गुरुदेव ने केवल अग्निकाण्ड की चर्चा की। मैं भी आज अग्निकाण्ड की चर्चा कर रहा हूँ। और विचार आता है कि अग्नि प्रदीप्त होने वाली है। वह समय निकट आ रहा है, जब प्राणी प्राणी का भक्षण करके यहाँ अन्धकार की प्रतिभा छा जायेगी। मैं इस सम्बन्ध में कोई विशेष विवेचना, भौतिक वक्ता मैं नहीं हूँ, मैं भविष्य वाणी उच्चारण करने नहीं आया, क्योंकि भविष्य वक्ता तो प्रभु ही कहलाता है। वही जानता है, कि संसार का क्या बनेगा। मानव तो अपनी क्रिया करता रहता है। विचारों की विचारों में एक संस्कृति का रमण करता रहता है। याग जैसे कर्म को जब आधुनिक काल का मानव एक पाखण्ड की दृष्टि उच्चारण कर रहा है। दृष्टि की पान कर रहा है। जब इस प्रकार का विचार बन जाता है। मानो देखो देवताओं के भोजन को भी पाखण्ड कह रहा है। और देखो इस वृत्तिका को दृष्टिपात करने वाला मानव इसे पाखण्ड नहीं कह सकते। इसे पाखण्ड नहीं कहता। कैसा पाखण्ड यह जगत है ? यह कैसा समय है ? मुझे स्मरण है कि राम के काल में याग की निन्दा करने वाले की वाणी को शान्त कर दिया जाता था।

याग से ही वायुमण्डल पवित्र बन सकता है आधुनिक काल के वैज्ञानिकों ने स्वीकार किया है

मुनिवरो देखो ! जब मेरे पूज्यपाद गुरुदेव एक समय मुझे महाराजा अश्वपति के यहाँ एक वृष्टि याग में ले गये थे राजा की प्रजा मानो याग के लिये ऐसे लालायित हो रही थी कि हम देवताओं का पूजन

करें देवताओ को हवि प्रदान करें जिससे वायुमण्डल पवित्र हो जाये। परन्तु देखो आधुनिक काल का मानव इन वाक्यों को जानता हुआ भी लज्जित हो रहा है। इन वाक्यों को जानता हुआ भी अपने पामरपन में परिणित हो रहा है। जब मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से कहा कि यह जो आधुनिक काल का वायुमण्डल चल रहा है। इस वायु मण्डल में मानो सङ्घर्ष हो रहा है। सङ्घर्ष हो रहा है। मानव की वाणी का आदान प्रदान हो करके इसका एक नृत्य हो रहा है। और उससे वायुमण्डल का निर्माण है। परन्तु वैज्ञानिक जन इस वाक्य पर लगे हुये हैं आधुनिक काल में, कि हम यह जो दूषित वायुमण्डल बन गया है, इस दूषित पन को कैसे शान्त कर सकते हैं। तो वैज्ञानिकों का जब भी समूह विद्यमान होता है। तो कुछ वैज्ञानिकों ने यह निर्णय किया है। कि गौ घृत में ऐसी विशेषता है। कि अग्नि में प्रदान करने से परमाणुवाद उदबुद्ध हो करके और वह वायुमण्डल में प्रवेश करके अशुद्ध परमाणुओं को नष्ट करके शुद्ध परमाणुओं को जन्म देता रहता है। ऐसा आधुनिक काल का वैज्ञानिक स्वीकार कर गया है। परन्तु देखो याग के कर्मकाण्ड, याग की प्रतिक्रिया को न करके समाज का कुछ अङ्ग इसे रूढ़ि स्वीकार इसके रूढ़ि में लाने वाला जगत बन गया। वैज्ञानिकजन इस रूढ़ि को समाप्त करना चाहते हैं।

याग में हिंसा का कोई प्रसङ्ग नहीं

परन्तु देखो कहीं मोहम्मद के मानने वाले, कहीं ईसा को मानने वाले, कहीं बुद्ध को मानने वाले नाना प्रकार की रूढ़ियों में यह प्राणी सत्य वक्ता नहीं बन रहा है। सत्य उच्चारण नहीं कर रहा है। केवल एक आर्यों का कोई अङ्ग स्वीकार कर रहा है। "शोभनीय गौघृताम्" वायुमण्डल को दृष्टिपात् नहीं किया जा रहा है। मुझे इस समय स्मरण है, वैज्ञानिक जब-जब भी दूषित वायुमण्डल बनाते तो राजा नाना प्रकार

के यागों में परिणित हो जाता था। महाभारत के काल में वाममार्ग की प्रथा आयी। उस प्रथा में नाना प्रकार की हिंसायागों में परिणित हुई। वह भी संसार समाप्त होने जा रहा है। कुछ प्राणियों में इस प्रकार की हीनता रह गयी है, जो यागों में हिंसा का प्रतिपादन करते हैं। मैं हिंसा करने वाले व्यक्तियों से प्रश्न करता रहता हूँ। जब याग मुक्ति के लिए, जब यह आत्मा का याग माना गया है। परम पवित्र याग है। तो यह हिंसा कैसी है ? परन्तु देखो यहाँ बाजपेयी याग, नाना प्रकार के यागों में हिंसा का प्रतिपादन हुआ। परन्तु आधुनिक काल में कुछ महापुरुष इस प्रकार आते रहते हैं जो शुद्ध वायुमण्डल को प्रसारित करते हैं। विचार आता है। हिंसा यागों में नहीं होनी चाहिये याग में हिंसा का प्रसङ्ग ही नहीं होता, यहाँ कोई प्रसङ्ग ही नहीं है। वैदिक साहित्य में प्रसङ्ग नहीं है। परन्तु देखो जब मैं यह विचारता रहता हूँ कि यह जो समाज है जब यह विज्ञान में स्वीकार करता है कि गऊ के घृत में और साकल्य में वह शक्ति है कि वायुमण्डल को दूषित से शुद्ध बना सकता है, पवित्र बना सकता है, प्रदुषण को समाप्त कर सकता है तो क्यों नहीं किया जा रहा है।

रूढ़ियों से राष्ट्र नष्ट हो जाता है।

रूढ़ियों में यह प्राणी अपने को नष्ट कर रहा है। राष्ट्र अपने को नष्ट कर रहा है। जब मैं राजाओं के समीप जाता हूँ, कि हे राजन ! धर्म क्या है ? तो कहता है कि देखो मोहम्मद का धर्म, ईसा का धर्म, बुद्ध का धर्म, नाना प्रकार के धर्मों की गणना हो जाती है। जब मैं यह प्रश्न करता हूँ शास्त्रविज्ञों से, कि धर्म एकोकी वचन या बहुवचन है ? तो वहाँ वे मोन हो जाते हैं। और वहाँ नाना धर्म कहकर के एक वचन को अपने से दूरी कर देते हैं। यह कैसी शिक्षा प्रणाली की एक अवहेलना हो रही है। धर्म की अवहेलना हो रही है। नाना धर्म कह

करके मानो प्रसन्न है। एक धर्म कह करके प्रसन्न नहीं। यह कैसी अवहेलना हो रही है। आज मैं जब गुरु शिष्य परम्परा में जाता हूँ। तो मुझे आश्चर्य आता है। मेरे पूज्य पाद गुरुदेव महाराजा अश्वपति के यहाँ अध्यापन का कार्य करते थे, ब्रह्मचारियों का निर्माण करते थे। परन्तु देखो आधुनिक काल में निर्माण नहीं हो रहा है। आधुनिक काल में तो रूढ़ियों का प्रसारण हो रहा है। और यह रूढ़ियाँ ही राष्ट्र के लिये मृत्यु का कारण बनती हैं। आधुनिक जगत में विज्ञान जहाँ दुरूपयोग में जा रहा है, उसके मूल में रूढ़ि हैं। जब मैं यह विचारता रहता हूँ, कि रूढ़ियों का जो आदान-प्रदान हो रहा है। यह रूढ़ियाँ समाप्त होनी चाहिये तो राष्ट्र में बेटा ! यह रूढ़ि समाप्त नहीं हो सकती। क्यों नहीं हो सकती ? इसलिये नहीं हो सकती कि धर्म है और धर्म को तुम रूढ़ि कह रहे हो। यह तुम्हारा विकासवाद बन गया है। इस पृथ्वी के ऊपर हम गति करने वाले प्राणियों में जब प्रीति नहीं रहेंगी, एक दूसरा एक दूसरे के समीप नहीं रह सकेगा, तो हे मानव ! हे राजा ! तेरा यह जो अवहेलनाप्रद विचार है, यह तुझे निगलता चला जायेगा, एक समय तेरी ही मृत्यु का कारण बनेगा।

रूढ़ियों और विज्ञान के दुरूपयोग के मूल में आधुनिक शिक्षा प्रणाली है

विज्ञान का जो दुरुपयोग हो रहा है, उसके मूल में शिक्षा प्रणाली है। उसके मूल में यह रूढ़िवाद हैं आधुनिक काल का विज्ञान मानव को त्रास दे रहा है। भयभीत कर रहा है। मानव को अमानवता के क्षेत्र में ले जा रहा है। यह संसार अग्नि वेदी पर विद्यमान है। यहाँ जिन गुरुओं ने, जिन आचार्यों ने मानव की रक्षा करने के लिये अपना विचार बनाया, आधुनिक समाज मानो वही एक मृत्यु का, अग्नि का काण्ड बन करके रह रहा है। राष्ट्र तो द्रव्य की लोलुपता से नष्ट होता चला जा रहा है।

आधुनिक विज्ञान से मान त्ता का ह्रास हो रहा है

आज में विशेष विवेच ा नहीं देता हुआ केवल पूज्यपाद गुरुदेव से यह उच्चारण करना चाहता हूँ। आधुनिक काल का जो विज्ञान है। वह मानो देखो जहाँ एक दूसरे के नष्ट करने वाले परमाणु और अणुओं का निर्माण कर रहा है। वहाँ जल अस्त्रों का भी निर्माण होने लगा है। परन्तु देखो वह "कालम् अम्बृही" देखो ऐसे ऐसे यन्त्र निर्माण होना यह कोई आश्चर्य नहीं है। परन्तु इसमें मानवता का ह्रास हो रहा है। जब मानवता का ह्रास हो रहा है, तो विज्ञान का बनेगा क्या ? विज्ञान की प्रतिभा क्या है ? देखो विज्ञान की प्रतिभा है। मानव की रक्षा के लिये यन्त्रो का निर्माण होना चाहिये, परन्तु वहाँ नाना प्रकार की चित्रावली बन करके मेरी पुत्रियों का नृत्य आ रहा है। अब उसमें केवल विलासिता का साकल्य बनाया जा रहा है। इसी विलासिता के साकल्य में अपने को मृत्यु के आँगन में ले जा रहा है। यह राष्ट्र यह समाज कैसे जीवित रह सकेगा ?

धर्म से ही मानव की रक्षा सम्भव है

विचार आता है कि वह समय दूरी नहीं है जब अग्नि के काण्ड होने वाले हैं। वह समय दूरी नहीं जब मानव मानव का भक्षण करने के लिये तत्पर हो रहा है। आधुनिक काल में हो रहा है। आज तो रूढ़ियों में आ रहा है। धर्म कह करके मानव-मानव के रक्त का पिपासा बन रहा है। क्या यह धर्म है ? धर्म में तो मानव की रक्षा होती है। धर्म में तो मानव का जीवन बनता है। परन्तु यहाँ धर्म के नामों का, मानव-मानव का हनन कर रहा है। नष्ट कर रहा है। कृतिका में रत्त हो रहा है।

वही प्राणी बचेगा जो साधक होगा आत्मबल प्राप्त करके रूढ़ियों से उपराम होकर याग की सुगन्धि लेगा

मैं कोई व्याख्याता नहीं मैं तो इतना उच्चारण कर रहा हूँ। हे यजमान तेरा जो शुभ कर्म है। तेरे यहाँ जो द्रव्य का सदुपयोग होता है। वह सदुपयोग सदा बना रहे। और द्रव्य का दुरूपयोग न होकर के, क्रोधाग्नि को शान्त करता हुआ, अपने में मौन रह करके, अपने को विचित्र बनाता चले। संसार में वही प्राणी जीवित रहेगा, वही प्राणी अपने आत्मबल को प्राप्त कर सकेगा जो साधक होगा, और रूढ़ियों से उपराम होकर के, याग की सुगन्धि लेगा। यह सुगन्धि चाहे मोहम्मद को मानने वाला हो, चाहे ईसा को मानने वाला हो चाहे किसी भी रूढ़िका हो परन्तु यह सुगन्धि के परमाणु सबके लिये एक ही वृत्त होते हैं। वह एकोकी वचन में रहते है। यह वास्तव में धर्म की प्रतिभा कहलाती है। और देखो "सुगन्धम ब्रह्महे" देखो सुगन्धि सबके लिये सुन्दर है।

ये तो सदैव एक ऐसा वृत्त है। जब ऋषि मुनियों ने बहुत अनुसन्धान करके अपने में धारण किया अपने में लाने का प्रयास किया। "आहारम् ब्रह्मवाच" जहाँ आहार से बुद्धि का निर्माण होता है वहाँ आहारों से बुद्धि का विनाश हो रहा है। मानो मेधा का विनाश हो रहा है। विचार क्या ? आहार–व्यवहार पवित्र रहना चाहिये, यजमानो का। हे राजा ! यदि तू महान बनाना चाहता है राष्ट्र को, तो तेरा आहार और व्यवहार शिक्षा प्रणाली यह तेरा पवित्रवाद रहना चाहिये। विज्ञान का सदुपयोग होना चाहिये। इस मानव की चिन्ता के मूल में एक विज्ञान का दुरूपयोग है इसीलिये विज्ञान का दुरूपयोग नहीं होना चाहिये। इसका सदुपयोग होकर के जहाँ पुत्रियों के नृत्य होते हैं, मेरी पुत्रियों के जीवन चरित्र महान होने चाहिये जिससे प्रत्येक मानव अपने में गौरव कर सके कि वास्तव में मेरा जीवन इस प्रकार का बनना चाहिये जहाँ महर्षि कणाद

और महर्षि जैमिनी जैसे बुद्धिमानों का नृत्य हो। जहाँ देखो भारद्वाज मुनि महाराज अपने पूर्वजों के चित्रों को यज्ञशाला के यन्त्रों में देते रहते थे, इस प्रकार का विचार नृत्य होना चाहिये। आज मैं जब शिक्षा प्रणाली की विचित्रता में जाता हूँ। तो मुझे आश्चर्य आता है। यहाँ प्रत्येक मानव चिन्तित होता जा रहा है। विचारक नहीं रहा है। परन्तु देखो उसके मूल में राष्ट्र का स्वार्थवाद है। पद की लोलुपता है, द्रव्य की लोलुपता है। ये जीवन को नीचा बनाने के लिये है। परमात्मा का चिन्तन याग जैसे कर्म आत्मीय कर्म और देखो परमात्मा का चिन्तन होना चाहिये। अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा चाहूँगा।

पूज्यपाद गुरुदेव द्वारा उपसंहार

मेरे प्यारे ऋषिवर! मेरे प्यारे महानन्द जी ने आज अपने जो विचार दिये उनके हृदय में एक दाह है। एक वेदना लगी हुई है। क्योंकि देखो प्रत्येक मानव यही चाहता है कि मैं आनन्द से संसार में अपने जीवन को व्यतीत करूँ और वह आनन्द भौतिकवाद में नहीं वह आनन्द तो केवल अपनी प्रवृत्तियों को ऊँचा बनाने से प्राप्त होता है। तो यह मेरे महानन्द जी ने अपने वाक्य प्रकट किये, यजमान के लिये यह विचार दिया। आज मैं भी यजमान तेरे जीवन का सौभाग्य बना रहे। "द्रव्याम् भूतः प्रवाः" द्रव्य का सद्उपयोग होता रहे। जीवन की धारा महान बनी रहे। और इसके साथ ही आज का हमारा वाक्य अब समाप्त होने वाला है। मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने जो विचार वैज्ञानिकों के सम्बन्ध में राष्ट्र के सम्बन्ध में दिये हैं। वो मानो अवहेलना वृत्त है। इसलिये हमारी मनोनीत इच्छा यह रही है कि प्रत्येक प्राणी अपने में महान और सुसज्जित और विज्ञान से लेकर के राष्ट्रवाद तक समाज को ऊँचा बनाये और विज्ञान का दुरूपयोग न हो। आज का वाक्य समाप्त यही होता है। अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

●●●

आत्मा और योग

ॐ गायन्त्वारथम् विश्वादेवम् माम्नात्मा ऋषिः।
विश्वाः विष्णु त्वारथम् मन्थर आभ्याम्।।
ॐ देवम् भविते गणम् भगाय विश्वारन्नः।
विष्णु रथम् विष्णु रत्वा विश्वम् माम यसर्वा विश्वेन्माः।।

देखो मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भाँति कुछ मनोहर वेद मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा आज हमने पूर्व से जिन वेद मन्त्रों का पठन-पाठन किया, हमारे यहाँ परम्परागतों से ही उस मनोहर वेद वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद वाणी में उस महामना परम पिता परमात्मा की महती का वर्णन किया जाता है। क्योंकि उसकी जो महती है वो चारों दिशाओं में ओतप्रोत है और एक एक कण-कण मानो उस परमपिता परमात्मा की उस महती में पिरोया हुआ है मानो उसी में वो रत रहने वाला है। तो विचार आता रहता है, कि परम पिता परमात्मा, हमारा जो देव है, वह महादेव कहलाता है। देवताओं का भी देवता है। हमारे आचार्यों ने इसीलिये कहा है कि इस महादेव की उपासना करो वह हमारे अन्तर्हृदय में विद्यमान रहता है और उसी की प्रतिभा में सब हम प्रतिभाषित हो रहे हैं। तो विचार आता रहता है कि हम परमपिता परमात्मा की उस महती को जानते रहें जिस महती के कारण यह जगत अपनी आभा में निहित हो रहा है। हमारा वेद का मन्त्र ! उस परमपिता परमात्मा को विष्णु के नाम से वर्णन कर रहा है। "आत्माम् भूतम् विष्णु रतप्रवा आत्माः।"

आत्मा एवम् प्राण

वेद का वाक्य कहता है कि आत्मा विष्णु है। और विष्णु कहते हैं, जो पालना के मूल में विद्यमान है। मैं तुम्हें कई समय से विष्णु की विवेचनाओं अथवा उन वार्ताओं को प्रकट कर रहा हूँ जिनमें उन परमपिता परमात्मा की महती निहित है और एक-एक वेद का मन्त्र मानो उसमें पिरोया हुआ है। हमारे यहाँ नाना प्रकार के पठन-पाठन का जो क्रम है वह भिन्न-भिन्न प्रकार की कृतियों में रत रहा है। जैसे हमारे यहाँ जटा पाठ है धन पाठ, माला पाठ, उदात्त, अनुदात्त, नाना प्रकार से वेद मन्त्रों का गान गाया जाता है, परन्तु वह गान गाता है, तो प्राणों को जानता है; और जो प्राणों को नहीं जानता वह गान भी नहीं गा सकता, क्योंकि जो ये जानता है कि प्राण को अपान में ले जाना है और अपान को प्राण में ले जाना है और अग्नि उनके मध्य में विद्यमान है, तो वह प्राणेश्वर गान गाता है और वह कैसा गान गाता है ? वह ऐसा गान गाता है, जिससे नगरों की दीपावली बन जाती है, ग्रहों की दीपावली बन जाती है। तो बेटा देखो भौतिक और आध्यात्मिक दोनों उसमें निहित हो जाते हैं परन्तु यह विचारा जाता है कि हमारी आत्मा का नाम विष्णु है, उन्हीं वाक्यों पर तुम्हें ले जाना चाहता हूँ क्योंकि विष्णु सूत्रों का वर्णन और प्रायः हमारे यहाँ उद्‌गीत गाया जाता है क्योंकि जो पालना के रूप में विद्यमान है, उसका नाम विष्णु है, यह सर्वसिद्ध है, और विचारणीय प्रसङ्ग है। जिसके ऊपर हमारे यहाँ ऋषि मुनि परम्परागतों से अपने में विचार विनिमय करते रहे हैं।

पालन कर्त्ता विष्णु

आज उन विचारो में मैं तुम्हें नहीं ले जाना चाहता हूँ, केवल विचार

विनिमय यह कि हम उस परमपिता परमात्मा और आत्मा के दोनों के मिलन की चर्चा करते रहते हैं। हमारे यहाँ दोनों प्रकार के योगश्चरस्थ, योग में मानो परिणित हो जाता है साधना में रत हो जाता है। जब "अमृतम् ब्रह्मा: विष्णु: जब यह आत्मा विष्णु के रूप में वर्णन की जाती है तो विष्णु ही तो पालन करने वाला है। जब तक इस मानव शरीर में विष्णु विद्यमान रहता है, तो शरीर क्रियाशीलता में दृष्टिपात हो रहा है, यह देखों मग्न भी होता है व्याकुल भी हो रहा है मौन भी कर रहा है और भी नाना प्रकार की कृतियों में रत रहता है और विज्ञान वेत्ता भी है, ज्ञानी है, वही मानव है, जिसमें इतने रूप माने गये हैं तो वह रूप किस कारण से हैं क्योंकि आत्मा उसमें विद्यमान है यदि आत्मा नहीं है तो विज्ञान है परन्तु वह वैज्ञानिक नहीं रहा। ज्ञानी है परन्तु वह ज्ञान नहीं रहा वो चेतना-बद्ध हो गया। वह दृष्टिपात करता हुआ भी नहीं कर रहा है क्योंकि वो चेतना नहीं है

विष्णु का स्वरूप

तो विचार आता रहता है कि आत्मा का नाम विष्णु है और हमें उस विष्णु की उपासना करनी है। और विष्णु स्वरूप बनना है। मुझे बहुत सी वार्ताएँ स्मरण आती रहती हैं, मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक समय प्रकट कराया कि ये विष्णु तो अक्षय क्षीर सागर में रहता है और अक्षय क्षीर सागर में नारद गन्धर्व गान गाता है। नारद वीणा का स्वामी है और लक्ष्मी चरणों में ओत-प्रोत है। तो विचारना यह है कि हम अक्षय क्षीर सागर किसे कहते हैं। अक्षय क्षीर सागर कहते हैं जहाँ "अक्षयव्रहा" जो मृत्यु से पार होता है वो अक्षय क्षीर सागर है जहाँ जा करके मृत्यु का भय नहीं होता जो ज्ञान और वेद का नाम ही अक्षय क्षीर सागर है। मेरे प्यारे देखो गन्धर्व नाम बुद्धि का है और नारद नाम मन का है मन अपनी वीणा को ले करके चञ्चलता रूपी जो वीणा है उसे त्याग

देता है और गन्धर्व जो बुद्धि है वो नाना प्रकार का गान-गाने वाली है। कहीं बुद्धि से मुनिवरो देखो विज्ञान की परख में मानव प्रथित हो जाता है कहीं मानो प्रज्ञामें प्रवेश करके उसका अनुभव करने लगता है क्रिया में लाता है कहीं ऋतम्भरामयी बन करके ज्ञान करके, मौन हो जाता है कहीं बेटा प्रज्ञावी बनकरके वो चेतना में चेतना का मिलान करने लगता है। इतने सूत्र जब बनते हैं तो वो किस कारण है क्योंकि आत्मा विद्यमान है विष्णु है। और यदि आत्मा रूपी विष्णु नहीं होगा तो मानो ये चेतना में चेतना का भास नहीं कर सकेगा।

आत्मा विष्णु स्वरूप कैसे बने

तो विचारना ये है कि अक्षय क्षीर सागर में लक्ष्मी चरणों में ओत-प्रोत हैं किस समय ओत-प्रोत होती है बेटा एक समय महर्षि अष्टाचार्य के आश्रम में विद्यमान था और महर्षि अष्टाचार्य से यह प्रश्न हो रहा था कि महाराज ये आत्मा विष्णु कैसे बनता है तो उन्होंने कहा, जानने से। परन्तु अन्तरात्मा में संतुष्टि नहीं हुई। न होने के कारण उन्होंने कहा चलो विभाण्डक जी के द्वार पर गमन करते है अब वे विभाण्डक के द्वारा पहुँचे तो महर्षि विभाण्डक से कहा कि महाराज ये आत्मा विष्णु कब, किस काल में बनता है उन्होंने कहा जब ये जगत को विजय कर दिया जाता है तो जगत को विजय करने मात्र से ही "अन्तवा भूतम ब्रह्मः ! आत्माम् दिकाम् देवत्वाम् लोकाः" मानो देखो आत्मा विष्णु है और यह अक्षय क्षीर सागर में किस समय़ होता है इसके ऊपर बेटा एक ऋषि की अपनी टिप्पणियाँ हैं।

सहज योग मूलाधार चक्र

ऋर्षि का अपना मन्तव्य है और वहकहता है कि जब ये योगेश्वर प्राण का अभ्यास करता है और प्राण को अपान में प्रवेश करता हुआ

आत्मा का जो समन्वय होता है प्राणों के साथ में, वह मूलाधार में होता है और मूलाधार में जब ये गमन करने लगता है तो पृथ्वी के विज्ञान को क्रियात्मकता में लाने का प्रयास करता है

नाभिचक्र

जब मूलाधार से ऊर्ध्वा में गमन करता है तो नाभि चक्र में आ जाता है जहाँ वायु बेग से गमन करता है और वायु बेग से गमन करके प्राणों का रूप बन जाता है प्राणों की प्रथकता हो जाती है तो वह जो नाभि केन्द्र ये शरीर का मध्य कहलाता है जैसे यज्ञशाला इस संसार का, ब्रह्माण्ड का मध्य कहलाता है जानते-जानते बेटा एक प्रश्न आया कि संसार की नाभि क्या है संसार की नाभि याग है और मानव की नाभिनाम्यान् जहाँ वायु का वेग गमन करता हो जहाँ वायु अपनी वृतियों में रत रहने वाली हो तो उसे नाभिचक्र कहते हैं और नाभिचक्र का जो समन्वय होता है वह इड़ा पिंगला सुषम्ना से निपायमान होता है और आत्मा उसका अनुभव करता रहता है

हृदय चक्र

उसके पश्चात् उर्ध्वा में जब गमन करता है तो इड़ा पिंगला के साथ में यही मुक्त आत्मा हृदय चक्र में प्रवेश करता है जहाँ संसार की जितनी भी वस्तुएँ हैं, सब हृदय में समाहित हो जाती हैं। एक मानव मोह कर रहा है, वो वहाँ से अनुभव कर रहा है, उसकी जो प्रतिष्ठा है वो हृदय में हैं, श्रद्धा कर रहा है वह भी हृदय में है, पत्नी को दृष्टिपात कर रहा है, उसका समन्वय हृदय से है, माता को दृष्टिपात कर रहा है उसका समन्वय भी हृदय से है, ज्ञानी बन रहा है, ज्ञान की प्रतिष्ठा भी हृदय में है, हृदय जो चक्र है, बेटा ऐसा है। चक्र उसे कहते है जो गमन करता है, मानो जो गतिवान रहता है उसी में जब

बेटा आत्मा विद्यमान होता है इड़ा पिंगला सुषम्ना के साथ में, तो ये "आत्मा भूतम् ब्रह्मेः" संसार में जितनी भी वस्तुएँ चाहे वो विज्ञान रूप में हैं चाहे वह भौतिक रूप में हैं चाहे वेद का सबका समन्वय बेटा हृदय से होता है। हृदय से हृदय का जब मिलान होता है, तो हृदय-ग्राही हो जाता है। एक समय एक माता से प्रश्न किया, माता ! तेरा हृदयक्या है; तो वह कहती है कि मेरा हृदय तो मेरा पुत्र है। जब पुनः यह प्रश्न किया कि हे माता ! तेरा हृदय क्या है ? तो उसने कहा कि मेरा जो हृदय है वो संसार की जानकारी है। जब पुनः यह प्रश्न किया कि माता तेरा हृदय क्या है ? वह कहती है कि जितना संसार का प्रकृति मण्डल है वह सब मेरा हृदय कहा जाता है।

मेरे प्यारे देखो हृदय की बड़ी विचित्र विवेचना है क्योंकि इसी में सर्वत्रता विद्यमान रहती है हृदय को जब उदार बनाया जाता है तो वह हृदय उदार हो जाता है। हृदय में जब क्रोध की मात्रा आती है तो यह हृदय कठोर बन जाता है। यही हृदय पाठक बन करके पाठ्यक्रम में परिणित हो जाता है। यह हृदय की जो वृत्तियाँ है ये बड़ी विचित्र हैं, मेरे प्यारे देखो उसे हृदय चक्र कहते हैं। चक्र इसलिये कहते हैं कि भिन्न-भिन्न रूप धारण करता रहता है। नेत्रों से प्रकाश आता उसकी प्रतिष्ठा हृदय में हैं, श्रोत्रों से शब्द आता है, उसकी प्रतिष्ठा हृदय में है और देखो घ्राण से सुगन्ध आती है दुर्गन्ध आती है उसका निर्णायक भी हृदय कहा जाता है। प्रजा से कहीं प्रीति आ रही है कहीं दुरिता आ रही है उसकी प्रतिष्ठा भी हृदय में विद्यमान है। रसना नाना प्रकार के रस हैं, कहीं मधु है, कहीं खटरस है, कहीं कसैला है, षटरस कहलाते हैं परन्तु उनका जो स्वादन है वह भी हृदय में प्रतिष्ठित हो रहा है इसीलिये बेटा योगीजन हृदय को हृदयाङ्ग कहते हैं। विचारना यह कि हृदय से श्रद्धा है, हृदय में ही तो श्रद्धा उत्पन्न होती है और हृदय से त्याग की भावना आती है और परमात्मा से हृदय का समन्वय

होता है तो मेरे पुत्रो देखो हृदय चक्र है यह चक्रिका की भाँति गमन करता रहता है और गमन करता हुआ आत्मा अब आगे गमन करता है हृदय-चक्र को भी त्याग देता है तो कण्ठ चक्र में प्रवेश करता है

कण्ठ-चक्र

मुनिवरो देखो जब कण्ठ चक्र में चला जाता है "कण्ठाम् भूमे ब्रतहा वेदस्वतम्" वेद का वाक्य कहता है कि कण्ठ ही तो हमारा सजातीय कहलाता है बेटा कण्ठ में मेरी पुत्रियाँ आभूषणों को धारण करती हैं। किस लिये ? क्योंकि ये जो कण्ठ है, इससे मानव का निर्माण है, जब माता के गर्भस्थल में हम जैसे शिशु होते हैं तो वह जो आभूषण हैं स्वर्ण का आभूषण, मणियों का आभूषण बाल्य के शरीर से उसका समन्वय होता है कण्ठ से समन्वय होता है परन्तु माता का जो कण्ठ है वह जहाँ र्स्वण से आभूषित होता है, वहाँ वह माता का कण्ठ बेटा ज्ञान और विज्ञान से सुशोभित होना चाहिये, ज्ञानी होना चाहिये। देखो माता का जो वास्तविक श्रङ्गार है, वो ज्ञान है, विवेक है और वही मणियों की माला है, वही र्स्वण की माला कहलाती है। तो विचार आता है बेटा कण्ठ इतना हमारा सजातीय होना चाहिए कण्ठ चक्र कहा जाता है इसमें नाना प्रकार का ज्ञान हो करके जाता है जैसे ये रसना है नाना प्रकार के आहार करती रहती है परन्तु कण्ठ चक्र उसका मार्ग है और वह मार्ग बनकरके मुनिवरो देखो वह भौतिक कहलाता है तो विचार आता रहता है कि आत्मा रूपी जो विष्णु है जब कण्ठ चक्र में प्रवेश करता है तो बेटा कण्ठिका और सजातीय बन जाती है। तो विचार आता है बेटा जब मैं माता से यह प्रश्न करता हूँ माता ! तेरा जो कण्ठ है वो किसके लिये है ? तो माता कहती है मेरा कण्ठ मानो कण्ठ के लिये है। कण्ठ-कण्ठ के लिये कहलाता है मेरे पुत्रो देखो वहीं परमाणु निर्माणित कहलाये जाते हैं। जब माता अपने मधुर कण्ठ से

बाल्य को मधुर बना देती है मानो वह संसार को मधुर बना देती है। और बाल्य को जब पुत्र को मधुर बना देती है तो वह मधुर में प्रवेश हो जाता है मेरे पुत्रो देखो कण्ठ इतना प्रिय होना चाहिये जिस कण्ठ में मेरे प्यारे आभूषण स्वर्ण के और मणियों के आभूषणों की प्रशंसा वहाँ उनके ज्ञान की प्रशंसा होनी चाहिये कि कितना माधुर्य कितना मधुर वाक्य उच्चारण किया। इससे मेरा अन्तर्हृदय प्रसन्न हो गया।

ध्राण-चक्र

तो मेरे प्यारे देखो जब ये आत्मा कण्ठ चक्र से जब घ्राण चक्र में प्रवेश करता है तो बेटा देखो पृथ्वी का जितना भी विज्ञान है पृथ्वी का पार्थिव जितना भी गुरुत्व परमाणु में वे सब उसके आधीन देखो सब उसके संरक्षण में गमन करने लगता हे तो मेरे प्यारे देखो उसको स्वादिष्ट चक्र कहा जाता है इसको घ्राण चक्र भी कहते हैं ''घ्राणाम् भूतम ब्रह्मे'' जितनी घ्राणेन्द्रियाँ हैं वे इन्द्रियाँ उसके संरक्षण में रहती हैं और वह विष्णु आत्मा अपने क्रिया-कलापों में परिणित हो जाता है। हे आत्मा ! तू विष्णु है ! हे आत्मा ! तू अक्षय क्षीर सागर में रहता है। तो मेरे प्यारे देखो ''घ्राणाम् ब्रह्म व्रतम''।

त्रिवेणी-चक्र आज्ञा-चक्र

आगे चलकर देखो तीन प्रकार की जो कृतियाँ कहलाती है जो मस्तिष्क में जिसे हम त्रिवेणी कहते हैं बेटा त्रिवेणी किसे कहा जाता है त्रिवेणी कहते है जहाँ तीन नदियों का संगम होता हो, त्रिवाद होता हो, बेटा इड़ा पिंगला सुषमना ये शरीर में तीन नदियाँ कहलाती है परन्तु बाह्य जगत में देखो गङ्गा जमुना सरस्वती कहलाती हैं मेरे प्यारे देखों गङ्गा यमुना सरस्वती और देखो अम्रतम् इड़ा पिंगला सुषम्ना जब ये कृतिका में बेटा प्रवेश करती हैं तो वहाँ तीनों नाड़ियों का समन्वय

हो करके और एक अभ्रोत नाम की एक नाड़ी है उसका बेटा जब समन्वय होता तो कृतिका बन जाती है और कृतिका बन करके बेटा देखो वहाँ एक स्वर ध्वनि होती है और वह ध्वनि मुनिवरो देखो तीनों नाड़ियों की और अभ्रोत नाड़ी के सम्बन्ध में जब उनकी अनाद रूप में स्वर ध्वनि होने लगती है जिस ध्वनि को बेटा योगेश्वर साधक मुनिवरो देखो अपने में पान करता रहा है अपने में स्वर संगम में उसका समन्वय करता रहा है तो विचार आता रहता है कि मानो देखो आत्मा विष्णु जब वह त्रिवेणी स्नान करता है, त्रिवेणी में मानो देखो त्रिवर्धा बन जाता है तो बेटा देखो उसे त्रिवेणी कहा जाता है। हे विष्णु ! तू त्रिविद्या को जानने वाला है, हे विष्णु ! तू त्रि वेदों को जानने वाला है तू इसलिये विष्णु कहलाता है आत्मा उस काल में विष्णु कहलाता है जब बेटा त्रिविद्या में वह परिणित हो जाता है और त्रिवर्धा बन जाता है योगेश्वर बन करके त्रिवर्त कहलाता है

ब्रह्मरन्ध्र-प्रवेश

मेरे प्यारे मैं इस सम्बन्ध में विशेषता में नहीं ले जाऊँगा केवल विचार विनिमय यह कि देखो आत्मा का नाम विष्णु है और "विष्णाम् भूतम ब्रह्मे अव्रतम्" बेटा देखो जब यह कृतिका को त्याग देता है तो यह ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश कर जाता है। ब्रह्मरन्ध्र वहाँ होता है जहाँ शिखा का मध्य होता है। हमारे आचार्य जन जब ऋषि मुनि विद्यमान होते हैं तो कर्म काण्ड की पद्धतियों में बेटा सबसे प्रथम वो शिखा को लेते है क्योंकि शिखा के निचले भाग में ब्रह्मरन्ध्र है और जब यह विष्णु रूपी आत्मा जब ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश होता है तो इड़ा पिंगला सुषम्ना नाड़ियों का एक समूह विद्यमान हो जाता है वहाँ ब्रह्मरन्ध्र के उपर विराजमान होने वाला विष्णु है और वह विष्णु जब विद्यमान होता है तो मेरे प्यारे देखो वहाँ कमल डण्डी जैसी एक धारा उत्पन्न होती

है ओर वह धारा उत्पन्न हो करके बेटा उनका लोक लोकान्तरों से समन्वय होता हे तो वह लोक लोकान्तरो का ज्ञानी बन जाता है योगेश्वर उनमें रमण करता है और तीन प्रकार की जो विद्या ज्ञान, कर्म, उपासना मेरे प्यारे देखो उसका वो स्वामित्व करता है वह उसको उर्ध्वा भाग में गमन करता हुआ ब्रह्मरन्ध्र में बेटा चक्रिका गमन करती है और गमन करके वहाँ से एक मानो देखो रसना के उर्ध्वा भाग में बेटा एक रसास्वादन होता रहता है उस स्वादन को योगी अपने में पान करता रहता है और वह आत्मा, योगी आत्मा "भूतम विष्णु" बेटा देखो उसका स्वादन करता रहता है और उसको अपने में स्वादन करके बेटा उसमें अमृत का आनन्द लेता है वह मुनिवरो देखो मधु "अम्रतम ब्रह्मे देवहा" वह अमृत फो पान करता रहता है उसी को सोम रस कहते हैं।

आत्मा का विष्णु स्वरूप

जो योगीजन बेटा देखो सोम रस को पान करते हैं सोम कहते हैं बेटा देखो जहाँ मौन हो जाता है सोम कहते हैं जहाँ आनन्द ही आनन्द प्राप्त करता रहता है, उस आनन्द का नाम सोम है। और सोम को पान करने वाला बेटा विष्णु कहलाता है। मेरे प्यारे देखो वह उसका अक्षय क्षीर सागर है, वहाँ मन अपनी चञ्चल रूपी वीणा को ले करके शान्त हो जाता है बेटा वो प्रकृति रूप बन जाता है और मुनिवरो देखो वहीं "अप्रतम् वरूणस्ताम् ब्रह्मा" वह जो बुद्धि है जो चार प्रकार की विभक्त क्रिया में विभक्त हो रही थी, वह मानो देखो गन्धर्व बन करके गान गाना शान्त कर देती है, वह भी मौन हो जाती है। मेरे प्यारे वो प्रकृति रूप बन गया है, मन और बुद्धि के रूप में वह सब प्रकृति रूप बन गया है, सूक्ष्म बन गया है। मेरे पुत्रो देखो "ब्रह्मणे ब्रतहा" और वह जो लक्ष्मी है जो संसार को लुभाने वाली है संसार को अपने में धारण कर रही है वह लक्ष्मी उसके चरणों में ओतप्रोत हो जाती

है। योगी के चरणों में लक्ष्मी ही तो ओतप्रोत होती है। वह अपनी चंचलता को त्याग देती है, चरणों में नम्र बन जाती है। बेटा देखो वह जो लक्ष्मी है, जो संसार को भ्रमित कर रही है, संसार को लुभाने वाली है। कहीं क्रोध के द्वारा, कहीं काम के द्वारा, कहीं मोह के द्वारा, कहीं अभिमान के द्वारा, और कहीं तृष्णा के द्वारा, यही तो मुनिवरो देखो लक्ष्मी कही जाती है। ये नाना रूपों में परिणित हो करके मेरे पुत्रो देखो ये ठग लेती है। उसे अपने में धारण करती है परन्तु देखो वो लक्ष्मी चरणों में सब चञ्चलता को त्याग करके और वह चरणों में ओत-प्रोत हो जाती है यह कहके, स्वामी मैं तुम्हारे चरणों में हूँ और मैं मानो देखो क्षमा प्रार्थी हूँ।

आत्मा का नाम विष्णु

तो मेरे पुत्रो देखो विचार विनिमय क्या यह आत्मा विष्णु है जो अक्षय क्षीर सागर में गमन करता है अक्षय क्षीर सागर नाम विवेक का है जब ये ज्ञान में हृदय में अवृत्तियों में अष्टचक्र नौ द्वारो में, नौ द्वारों को जब ये जान लेता है तो इससे विवेक हो जाता है तो उसका नाम अक्षय क्षीर सागर है अक्षय कहते हैं जहाँ किसी का विनाश नहीं होता वह अक्षय है तो बेटा देखा अक्षय क्षीर सागर है जहाँ मुनिवरो देखो काम, क्रोध, मोह, लोभ इत्यादियों से उपराम हो करके और देखो विष्णु बन करके वह ब्रह्मरन्ध्र में बेटा अपनी कृतिका में गमन कर रहा है मेरे प्यारे वही सुषम्ना को नीचे दबा करके उसमें रत है शेष नाग की शैय्या पर विद्यमान है वह शेष नाग क्या है बेटा काम, क्रोध, मोह, लोभ मद पांचों फनों वाला शेष नाग है और वह शेष नाग की शैय्या पर विराजमान होने वाला विष्णु है, गमन कर रहा है। परन्तु विश्वस्तप्रह्मः वही उसमें रत है उस आत्मा का नाम बेटा देखो उस अक्षय क्षीर सागर में वो आत्मा विद्यमान है जो बेटा अष्टचक्रों नौ द्वारों वाली जो अयोध्या

पुरी है बेटा देखो उसमें विद्यमान होने वाला उस अयोध्या में विष्णु है मेरे प्यारे वैदिक साहित्य में तो यौगिक वार्ता है और एक वार्ता मुझे साहित्य की स्मरण आती रहती हैं कि जब अयोध्या का निर्माण हुआ था तो भगवान मनु और कालेश्वर दोनों ने उस समय समुद्र के तट पर अयोध्या का निर्माण किया था और अष्ट चक्रों नौ द्वारों वाली पुरी का निर्माण किया। जब भी किसी नगरी का निर्माण किया गया सबसे प्रथम तो वह अयोध्या थी। अयोध्या का इस प्रकार निर्माण किया जैसे परम पिता परमात्मा ने शरीर रूपी नगरी का निर्माण किया। बेटा इसमें नौ द्वार हैं अष्ट चक्र हैं देखो सबसे प्रथम उन चक्रों में देखो "ब्रह्मेस्म' जिसको हम मूलाधार कहते हैं मूलाधार चक्र है नाभिचक्र है हृदय चक्र है कण्ठ चक्र है स्वादिष्ट चक्र है और त्रिवेणी चक्र है उसके पश्चात् देखो ब्रह्मरन्ध्र कहलाया जाता है मेरे प्यारे देखो इसी प्रकार अयोध्या का निर्माण हुआ और नौ द्वार है बेटा देखो दो चक्षु के द्वार हैं दो घ्राण के द्वार हैं और दो श्रोत्रों के द्वार हैं मानो देखो एक मुखार बिन्दु है दो मुनिवरो देखो गुहा उपस्थ दो द्वार ये नौ द्वारों वाली अयोध्या पुरी कहलाती है ये परमात्मा का निर्माण किया हुआ इसी को ले करके देखो भगवान मनु ने कालेश्वर ऋर्षि की सहायता ले करके अयोध्या का निर्माण किया इस अयोध्या पुरी में आठ चक्र और नौ द्वार कहलाते हैं इस आठ चक्रों वाली पुरी और नौ द्वारों वाली पुरी में बेटा देखो विष्णु वास करता है

मोक्ष प्राप्ति सहज

तो मुनिवरो देखो मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं मैं यौगिक वाक्यों और इतिहास के वाक्यों का दोनों का समन्वय करना नहीं चाहता हूँ मेरे पुत्रो विचार विनिमय केवल यही है आज देखो उस आत्मा का नाम विष्णु है जो विष्णु देखो अक्षय क्षीर सागर में रहता है और वह

शेष नाग की शैय्या बनाये हुए। शेष नाग शैय्या कही जाती है काम, क्रोध मद, लोभ, मोह को नीचे दबा करके ही बेटा ये आत्मा विष्णु बनता है योगेश्वर बन जाता है तो बेटा मैं विशेष चर्चा न देता हुआ केवल ये कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए और विष्णु स्वरूप को जानते हुए इस सागर से पार होने का प्रयास करें और आत्मा को विष्णु बनायें। वेद का ज्ञाता ज. होता है वह विष्णु है इसकी नाभि से कमल का जन्म होता है और कमल मुनिवरो देखो पंखुड़ियों वाला कहलाता है और देखो कमल में से ब्रह्मा का जन्म होता है और वह ब्रह्मा कौन है बेटा देखो ब्रह्म विद्या का जन्म होता है, "ब्रह्माण्ड द्यौ कृतम ब्रह्मे व्रतम देवाः" तो ब्रह्म विद्या को अपने में धारण करने वाला ही ब्रह्मा कहलाता है।

तो विचार विनिमय क्या मैं तुम्हें विशेष विवेचना तुम्हें देने नहीं आया हूँ विचार विनिमय केवल हमारा ये कि हम विष्णु को जानें जब तक इस शरीर में आत्मा विद्यमान है तब तक ये अयोध्या पुरी भी है, और जब आत्मा चला जाता है तो देखो वह विष्णु चला जाता है तो बेटा देखो अयोध्या भी खिण्ड भिण्ड हो जाती है, मृत बन जाती है, अब्रहा हो जाती है, निःसहाय हो जाती है, तो बेटा देखो विचारना केवल ये हमारा कि हम परमपिता परमात्मा के अनूठे जगत की अनूठी पुरी को जानने के लिये तत्पर हो जायें और आत्मवेता बनकरके प्रभु की महिमा को और वह जो महती है उसकी महती में रमण करते चले जायें बेटा उसके विश्वाव्रत लोकों में रत हो करके संसार सागर से पार होने का प्रयास करें आज मैं बेटा तुम्हें विशेष विचार देने नहीं आया हूँ मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ केवल तुम्हें परिचय देने चला आता हूँ और वह परिचय केवल ये है कि हमें बेटा योगेश्वर बनना चाहिए और वह विष्णु स्वरूप को अपनाना चाहिए जिससे बाह्य जगत और आन्तरिक जगत दोनों के हम वशिष्ट बन जायें दोनों के ज्ञानवेत्ता

बन जायें। ये है बेटा आजका वाक्य अब मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएँ कल प्रकट करूँगा। आज के वाक्य उच्चारण करने का हमारा अभिप्राय ये कि परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए और देव की महिमा का गान गाते हुए मानो देखो विष्णु रूप को अपनाते हुए सागर से पार हो जायें। तो ये है बेटा आज का हमारा वाक्य अब मुझे समय मिलेगा शेष चर्चाएँ कल प्रकट करूँगा।

ॐ देवानाहम् त्रिवरुणा वाचन्न रथम्।
आप्याम् देवाः।।
ॐ तन्द्रोयम् वारथम् आद्यः रतश्चरिम्।
आपाहाम।।
ॐ देवम् भू रतः आभ्याम् देवाः।
यन्सर्वः यम्वृताः।।

माछरा
२८-९-९२

योग और आत्मोत्थान

देखो, मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुण-गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहां परम्परा से ही उस महान् वैदिक ज्ञान का प्रसारण होता रहा है जिस ज्ञान को वेदों ने, ऋषि-मुनियों ने धेनु कहा है। यह दुही जाती है। धेनु, विद्या को भी कहा गया है, हम जब परमपिता परमात्मा के समीप जाना चाहते हैं। क्योंकि प्रत्येक मानव की तो ऐसी आकांक्षा होती है। संसार में मानव इस उदर-पूर्ति के लिए नाना प्रकार के प्रयत्न करता रहता है। परन्तु मानव की आत्मा तो प्रायः पिपासु रहती ही है। आत्मा को भी यह उत्सुकता होती है कि मैं उस ब्रह्म के समीप पहुंचू और अपने सखा को प्राप्त करूं।

बेटा ! **तुम्हें प्रतीत होगा जब याग करते हैं तो यज्ञशाला में उस अग्नि की गति ऊर्ध्व होती है। उसकी ऊर्ध्व गति क्यों होती है ? क्योंकि उसका जो सखा है, वह ऊर्ध्व दिशा में रहने वाला है। बेटा ! सूर्य के आँगन को अग्नि का प्रवाह रहता है। द्यौ-मण्डल की ओर रहता है। इस प्रकार प्राणीमात्र का आत्मा पिपासु रहता है और वह इस पिपासा में परिणित रहता है कि मैं आत्मा के ज्ञान को प्राप्त करूं।** क्योंकि आत्मज्ञान के लिए हमें वास्तव में अपनी उस पवित्र धारा को अपनाना है जिसको अपनाने के पश्चात् हमारा जीवन प्रायः पवित्रता में परिणित हो जाता है।

आओ, मेरे प्यारे ! मैं आज अधिक विवेचना तो नहीं प्रकट करूंगा, परन्तु आज का हमारा वेद-पाठ क्या कह रहा है ? हमारी वेदों

की परम्परा हमें कौन-सी आज्ञा दे रही है ? आंज हम किस मार्ग को अपनाना चाहते हैं ? बेटा ! उस मार्ग को अपनाने के लिए हम वास्तव में पिपासु रहते हैं क्योंकि यौगिक आत्माएं योग के द्वारा ऊर्ध्वगति को प्राप्त होती रहती हैं।

बेटा ! मुझे एक वाक्य स्मरण आ रहा है आज। बहुत परम्परा का एक शब्द है, यह ऋषि-मुनियों का विचार है। एक समय, बेटा ! महर्षि भृगु आश्रम में नाना ऋषि-मुनियों का एक समूह एकत्रित था। उस समय महर्षि मुद्गल जी के और शण्डिल्य जी के दो प्रश्न थे। उन्होंने यह कहा कि—हे ब्रह्मवेत्ताओ ! तुम ब्रह्म को जानते हो। परन्तु मैं एक वाक्य जानना चाहता हूं। महर्षि भृगु और महात्मा जमदग्नि बोले—बोलो, भगवन् ! तुम्हारा क्या प्रश्न है? उन्होंने कहा—भगवन् ! मैं यह जानना चाहता हूँ कि संसार में योग की कितनी आभाएं हैं और योग के द्वारा योगी अपनी आत्मा को कहाँ-कहाँ ले जा सकता है ? तो यह मैं जानना चाहता हूँ। बेटा ! ऋषि-मुनियों का मस्तिष्क तो ऊर्ध्वगति में जाने वाला था। परन्तु महर्षि भृगु और महात्मा जमदग्नि की उड़ान तो बहुत ऊंची रहती थी। देवर्षि नारद मुनि भी उस सभा में विराजमान थे। क्योंकि देवर्षि नारदमुनि चित्त के ऊपर अपना संयम करने वाले रहते थे। **जो योगी चित्त के ऊपर संयम कर लेता है, अहंकार के ऊपर संयम कर लेता है, उसका अहंकार चित्त का वाहन बन करके उसका आत्मा अन्तरिक्ष में रमण करता है।**

योग की गतियाँ

आज मैं तुम्हें यह निर्णय करा रहा हूं कि योगी की आत्मा का क्या-क्या कार्य रहता है। उस समय महर्षि भृगु जी ने और महात्मा जमदग्नि जी ने और महर्षि दधीचि और सोमकृति ऋषि महाराज इनके बेटे का विचार-विनिमय होने लगा। परन्तु महर्षि शाण्डिल्य मुनि ने

कहा कि हम यह जानना चाहते हैं कि योग की कितनी परिक्रियाएं होती हैं ? अब, बेटा ! परिक्रियाओं के ऊपर उनका विचार-विनिमय प्रारम्भ होने लगा। महर्षि भृगु बोले—हे महर्षि शाण्डिल्य जी ! अंगिरस गोत्र में उत्पन्न होने वाले ऋषि ! हम यह जानना चाहते हैं कि तुम योग की कितनी गति जानते हो ? महर्षि शाण्डिल बोले कि हम प्रायः योग की १२ प्रकार की गति स्वीकार करते हैं। महात्मा जमदग्नि से प्रश्न किया गया तो महात्मा जमदग्नि बोले कि हम इसकी कुछ और गति मानते हैं। आस्वेति ऋषि ने कहा कि हम इनसे और भी अधिक गति जानते हैं। परन्तु महर्षि भृगु ने कहा कि योग की गति ३६ प्रकार ही होती हैं। वह जो ३६ प्रकार की गतियां होती हैं, वह आत्मा का सूक्ष्म रूप है।

योग और तीन शरीर

आत्मा का, योग का जो प्रारम्भ है वह, बेटा ! तीन प्रकार के शरीरों को जानने का नाम, योग कहलाया गया है। सबसे प्रथम स्थूल, उसके पश्चात सूक्ष्म और उसके पश्चात् कारण कहलाया गया है। बेटा ! हमारे यहां कारण को ऐसा माना गया है, जो कारण शरीर है उसमें भी पंच-महाभूतों का मिश्रण रहता है क्योंकि वह पंच-महाभूतों की सूक्ष्मतम गति कहलाई जाती है। इसी प्रकार जो सूक्ष्म शरीर है, इसमें जब सतोगुण अधिक प्रबल हो जाता है और जब सूक्ष्म गति इसकी प्राप्त होती है तो यौगिक आत्माओं में रमण करने लगता है। **हमारे यहाँ कुछ ऐसा माना गया है, मानव की जितनी भी तमोगुण प्रवृत्तियां होती हैं, उतना ही मानव आवागमन में परिणित रहता है। जितनी भी तमोगुण, रजोगुण प्रवृत्तियाँ रहती हैं, उतना ही आवागमन निकट होता है। परन्तु जिसका सतोगुणी प्रवाह ऊँचा होता है, सतोगुण की उड़ान अधिक होती है, यौगिक उड़ान उसके साथ में होती है तो कहा करते हैं कि वह उनका जो आत्मा है वह अन्तरिक्ष में मोक्ष-**

आत्माओं, देव-आत्माओं के साथ वह रमण करता रहता है। ऐसे आत्मा पुनः संसार में आने के लिए तत्पर हो जाते हैं।

अवतारवाद का सिद्धान्त

तो विचार यह, मुनिवरो ! कुछ आत्मा ऐसे होते हैं जो मोक्ष के निकट होते हैं। परन्तु जब वह प्रकृति के इस चित्त को भ्रष्ट दृष्टिपात् करते हैं, उस समय मोक्ष के निकट वाले आत्मा प्रायः संसार में जन्म ले लेते हैं और वे संसार में जन्म ले करके संसार में अपना कुछ कार्य करके पुनः उसी गति को प्राप्त हो जाते हैं। क्योंकि यह स्थूल जगत् का जो कर्म है, उन आत्माओं को लिपायमान नहीं कर सकता। **उन आत्माओं के लिपायमान न होने के कारण इस लोक में ऊंचे से ऊंचा कर्म करके पुनः वे आत्मा उसी गति को प्राप्त हो जाते हैं। क्योंकि उनको रजोगुण और तमोगुण कदापि नहीं व्यापता इसलिए क्योंकि उनको स्वार्थ नहीं होता, वे निस्वार्थ होते हैं। उनको, मुनिवरो ! अभिमान नहीं होता। उनके लिए पर्वत और राजशैया एक सी होती है। ऐसे महापुरुषों को संसार का कर्म नहीं व्यापता।**

आत्मा की अबाध गति का मार्ग

मेरे प्यारे ! देखो, महात्मा महर्षि भृगु ने कहा कि आत्मा का जो मार्ग है, यह एक ऐसा सूक्ष्म मार्ग है जिसको जानने के लिए तुम्हें अनुभव की आवश्यकता है। प्रायः मानव यहं उच्चारण करता रहता है कि आज मैं योग के मार्ग में जाना चाहता हूं। मेरे प्यारे महानन्द जी प्रायः प्रश्न करते रहते हैं। आज भी इनका प्रश्न है कि आत्मा की अबाध गति किस प्रकार होती है ? हमने बहुत पुरातन काल में अपने प्यारे पुत्र के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा था कि जैसे भौतिक विज्ञानवेत्ता शब्दों के यानों का निर्माण करता है, इसी प्रकार, मुनिवरो !

देखो, योगी, यौगिक क्षेत्र में, योगियों के समाज में विराजमान हो करके वह उस प्राण के द्वारा अव्याहत गति से अपने शब्दों को संसार में प्रसारण कर सकता है। मेरे प्यारे! नारदमुनि भी इस वाक्य को स्वीकार करते थे। वह वैदिक साहित्य हमें बारम्बार आज्ञा देता है।

आत्मा और आवरण

आज के वेद-पाठ में आत्मा का बड़ा सुन्दर वर्णन आ रहा था। आत्मा जब इन नाना प्रकार के आवरणों से दूर हो जाता है, यह जो आवरण हैं, जिनको मल-विक्षेप-आवरण कहते हैं। तीन प्रकार के विक्षेप हैं। जब ये आत्मा से दूर हो जाते हैं तब यह आत्मा का आवागमन, आत्मा की प्रतिभा, आत्मा की उड़ान ऊंची बन जाती है।

मेरे प्यारे महानन्द जी यह प्रश्न किया करते हैं कि हमारी यह ज़ो आकाशवाणी है यह मृत-मण्डल में जाती है, पृथ्वी-मण्डल पर जाती है, ऐसा महानन्द जी ने कहा है। परन्तु उनके प्रश्न का उत्तर आज के वेद के पठन-पाठन में आ रहा था। बहुत पुरातन काल में इन्होंने प्रश्न किया। वेद का ऋषि कह रहा है—हे मुनिवरो! **जिसका अन्तःकरण पवित्र होता है, इस प्रकृति का आवेश इस प्रकृति के जो मल-विक्षेप-आवरण हैं यह उसको अधिक प्रभावित नहीं करते, तो उनका आत्मा, मुनिवरो! मृत-लोक के शरीरों से आत्मा का उत्थान हो करके वह द्यौ-लोक में, देवताओं की आत्मा में रमण करता है।**

प्रकृति के मण्डल और मोक्ष-प्राप्ति

मेरे प्यारे ऋषिवर! क्योंकि प्रकृति के भी तीन प्रकार के मण्डल हैं। एक स्थूल है, यह जो जगत् है लोक-लोकान्तरों वाला यह, बेटा! स्थूल जगत् है और इसी प्रकृति का एक सूक्ष्म मण्डल है। वह जो सूक्ष्म

मण्डल है, वह भी प्रकृति का एक जगत् है और एक कारण क्षेत्र है। कारण भी प्रकृति का ही एक जगत् है। तो मेरे प्यारे ऋषिवर! **'मोक्ष उसी का होता है, जो कारण से भी आत्मा उत्थान को प्राप्त होता है, प्रभु के आंगन में रमण करता है।'**

योगी का आहार

पुरातन काल में जब जिज्ञासु गुरु के द्वारा आत्मवेत्ता बनने के लिए जाता उस समय छः-छः माह तक उन्हें वृक्षों का पाञ्चांग दिया जाता था। आज प्रत्येक मानव योग की कल्पना करता है। ऐसा मुझे महानन्द जी ने प्रकट कराया। परन्तु योग की कल्पना साधारण प्राणी नहीं कर सकता। जब आत्मा के क्षेत्र में जाना विचारोगे उस समय तुम्हें यह प्रतीत होगा कि प्रभु के राष्ट्र में और योगी के लिए ऐसे-ऐसे विचार और ऐसी-ऐसी गति योगी की होती है कि साधारण मानव तो बुद्धि में विचार-विनिमय भी नहीं कर पाता। मेरे प्यारे ऋषिवर! मुझे स्मरण है, जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा थे तो उस समय, बेटा! वे केवल दो वृक्षों का पाञ्चांग देते थे, अन्न का अङ्कुर भी नहीं देते थे। मुनिवरो! 'वट वृक्ष' का पाञ्चांग का पान कराते। उससे, बेटा! क्या होता? कि मानव की तमोगुण की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती थी। जैसे अग्नि में अन्न को तपा देते हैं तो उसके अङ्कुर समाप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार, **मुनिवरो! योगीजन, जब यौगिक-व्यवहार इस प्रकार का करना चाहते हैं तो मुनिवरो! वह उन वस्तुओं का पान करें जिससे आत्मा का उत्थान हो। राजोगुण, तमोगुण का विनाश हो जाए। मल-विक्षेप-आवरण रहे ही नहीं। जब मल-विक्षेप-आवरण नहीं रहेंगे तो मानव की अन्तरात्मा का उत्थान होता रहेगा।**

प्राणों की गतियाँ

प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, नाग, देवदत्त, धनंजय, कूर्म और कृकल, ये इस मानव-शरीर में दस प्राण कहलाए जाते हैं। **इन दसों प्राणों को एकाग्र, एकत्रित करते हुए इन प्राणों की गति कण्ठ के ऊपराले, हृदय के ऊपरले भाग में आ जाती है। ब्रह्मरन्ध्र से और कण्ठ के मध्य, नाभि और कण्ठ के मध्य तक प्राण की अव्याहत गति रहती है। और, वह जो प्राण की अव्याहत गति है उसका सम्बन्ध सूक्ष्म-मण्डल से होता है। वह योगी उन महान् आत्माओं से जो उसके निकट हैं, उनसे वार्ता प्रकट करता है। उनसे सत्संग भी कर लेता है। उनसे विचार-विनिमय भी करता है। वह योग की एक 'स्वाति गति' कहलाई जाती है।**

मुनिवरो ! देखो, योग में भिन्न-भिन्न प्रकार की गति मानी गयी हैं। आज हमें उस योग की उन सिद्धियों में नहीं जाना चाहिए, जो प्रकृति में हमें तन्मय करा देती हैं, प्रकृति के क्षेत्र में महिमावादी बना देती हैं, महिमा करा देती हैं। **सिद्धियों के क्षेत्र में जो योगी चला जाता है, उसका विनाश हो जाता है। उसकी आत्मा का हनन हो जाता है। बेटा ! प्रायः वह इस संसार में प्रसिद्ध हो सकता है। परन्तु अपनी आत्मा के क्षेत्र में वह प्रसिद्ध नहीं होता। न योगियों के क्षेत्र में प्रसिद्ध होता है।** तो विचार-विनिमय यह कि मैं इस विषय को सूक्ष्म बनाने नहीं जाऊंगा।

योग-मुद्रा में आकाशवाणी का रहस्य

विचार क्या ? मेरे प्यारे महानन्द जी ने जो प्रश्न किया था बहुत पुरातन काल में, यह जो हमारी आकाशवाणी है यह मृत-मण्डल में जाती है, तो यह कैसे ? जब आत्मा का उत्थान होता है, यह क्यों

होता है ? क्योंकि हमारे बहुत से जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार, यौगिक संस्कार हमारे अन्तःकरण में विराजमान हैं। क्योंकि अन्तःकरण में संस्कार रहते हैं और अन्तःकरण में एक जन्म का संस्कार नहीं, करोड़ों-करोड़ों जन्मों के संस्कार रहते हैं। मुनिवरो ! वे जो संस्कार हैं वे ही मानव के जन्म का कारण बनते हैं। **यदि कोई भी संस्कार किसी आत्मा के साथ नहीं होगा तो संसार में मानव का आना असम्भव है। वह नहीं आएगा।** इसी प्रकार हमारे बहुत से जन्मों के संस्कार इस अन्तःकरण में विराजमान हैं, चित्त में विराजमान हैं। वह जो कारण क्षेत्र है चित्त का, जहां आत्मा के सन्निधान मात्र से चित्त में गति प्रारम्भ हो जाती है। जैसे परमात्मा के सन्निधान मात्र से यह प्रकृति नृत्य करने लगती है, उसी प्रकार आत्मा के सन्निधान मात्र से चित्त अपनी गति प्रारम्भ कर देता है। तो वे जो चित्त में नाना प्रकार के संस्कार हैं उनका उद्‌बुद्ध हो जाना असम्भव नहीं। परन्तु रहा यह कि साधारण प्राणी अथवा प्रत्येक प्राणी में से जिस पर अनुपम कृपा होती है अथवा उसको प्रायः संसार के लोग संसार से दूर कह सकते हैं। परन्तु उसका जो अन्तरात्मा है अथवा जो यौगिक क्षेत्र के लोग हैं, वे उसको संसार से दूर नहीं उच्चारण कर सकते।

शब्द-विज्ञान

मैंने बहुत पुरातन काल में इसका प्रयत्न किया। परन्तु आज तो वेद का पाठ आ गया। हमारे यहां वेदों के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार-विनिमय रहते हैं। मैंने बहुत पुरातन काल में यह वाक्य कहा। वही आज के वेदपाठ में भी आ रहा था। हमारे यहाँ एक समय, महर्षि भारद्वाज, महर्षि दालभ्य और शिलभ जी, एक समय तीनों ऋषियों ने विराजमान हो करके यह विचारा कि हम दृष्टिपात् करें कि यह जो अन्तरिक्ष है, यह वाणी का क्षेत्र है। यह जो वाणी है, ये जो शब्द

हैं, यह मानव से उत्पन्न हो करके इसका जो क्षेत्र है, वह अन्तरिक्ष माना गया है। हम यह जानें कि इस अन्तरिक्ष में कैसे शब्द हैं ? मुनिवरो ! विचारना यह है कि कुछ तो ऐसे शब्द होते हैं जिन शब्दों की प्रतीति को वायु छिन्न-भिन्न कर देती है, स्वाभाविक प्रकृति के क्षेत्र में नष्ट हो जाते हैं। परन्तु शब्द का जो मौलिक गुण है, जैसे शब्द उच्चारण किया गया और एक संस्कृत का शब्द है 'स्वाकृति', इसी प्रकार वेदवाणी का 'यस्य अस्मत्' है इसी प्रकार एक देवनागरी का शब्द 'यस्वास्वाकृति', जैसे हमारे यहां देवनागरी का शब्द है, 'यस्वा स्वाकृति' का 'स्वाकृति (जिसका) अभिप्रायः देवनागरी में 'आओ विराजो' तो ये जो शब्द हैं, इन शब्दों की जो प्रतिभा है, इसकी जो प्रतिष्ठा है, वह अन्तरिक्ष में मानी गई है। हमारे ऋषि-मुनियों ने यह परम्परा से स्वीकार किया है। इनकी सबकी प्रतिष्ठा अन्तरिक्ष में रहती है। ये अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित हो जाते हैं।

महर्षि दालभ्य और प्रवाहण, शिलभ जी ने और महर्षि भारद्वाज इन चारों ऋषियों ने विराजमान हो करके एक यन्त्र का निर्माण किया था। उस यन्त्र को 'शब्दकेति भामकेतु यन्त्र' कहा जाता था, जो वेदों में आता है। परन्तु उस यन्त्र में यह विशेषता थी कि यन्त्र में इस प्रकार पञ्चमहाभूतों से उन कणों को एकत्रित किया, कणों का समन्वय करते हुए उन शब्दों में यह विशेषता थी कि उनका चित्र आता था। अब से लगभग एक सहस्त्र वर्ष पूर्व या पाँच सौ वर्ष पूर्व मानव का शब्द किस प्रकार का था अथवा कैसे उनके विचार-विनिमय होते थे ? बेटा ! विचार यह कि महर्षि भारद्वाज मुनि ने अपने १०० वर्ष पूर्व उनके पुरखा अथवा वंश समाप्त हो गए थे और वह जब दार्शनिक समाज में विचार-विनिमय करते थे तो उनके चित्र अथवा और भी नाना ऋषि-मुनियों के शब्द उस यन्त्र में प्रकाशित हो जाते थे और वह जो यन्त्र था उसमें ऋषि-मुनियों के चित्र भी आते थे। यह तो प्रायः हमारा वैदिक सिद्धांत स्वीकार करता है। जैसा कि आज के वेदपाठ में आ रहा था।

प्रवचनों में हिन्दी भाषा होने का रहस्य

आजका वेद का ऋषि कह रहा है कि प्रत्येक शब्द के साथ, मुनिवरो ! मानव का चित्र जाता है। क्योंकि सूक्ष्म मण्डल में इस अन्तरिक्ष में शब्द का कोई तो आकार स्वीकार करते हैं जभी तो वह अन्तरिक्ष में प्रतिष्ठित होता है। तो **विचार-विनिमय यह कि उस समय हमारे यहां प्रत्येक भाषा अंकुर रूपों में अन्तरिक्ष में प्रायः रहती है। अब मुनिवरो ! देखो, जो विशेष आत्मा इस संसार में आने वाला होता है, वह उस भाषा को प्रायः अपना लेता है। (वह भाषा) अन्तरिक्ष से आनी प्रारम्भ हो जाती है, जिस भाषा का लोक में प्रचलन होता है और जो वैदिक विद्या से सम्बन्धित हो।** यह भी नहीं, चाहे वह 'अप्रति' ही नहीं, संस्कृत से सम्बन्धित हो, प्रायः उस भाषा को अपनाने के लिए वह तत्पर हो जाते हैं। **'प्रत्येक शब्द, प्रत्येक काल में रहते हैं।'** मैंने पुरातन काल में यह कहा था कि सृष्टि का प्रारम्भ, बेटा ! आज नहीं हुआ है, आज ही कलियुग नहीं है, आज ही द्वापर नहीं है, त्रेता भी नहीं, सतोयुग भी नहीं, परम्परा से इनका परिवर्तन होता रहता है।

(शेष उपसंहारवाची प्रवचन अप्राप्तहै)

लूथरा अकादमी, जम्मू
१४ अक्तूबर, १६७२

योग और पञ्चकोष

देखो, मुनिवरो ! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ परम्परा से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की प्रतिभा का वर्णन किया जाता है। क्योंकि वह परमपिता परमात्मा प्रतिभाशाली है, उसका जो ज्ञान और विज्ञानमय जगत् है, वह इतना अनन्त माना गया है कि वह सीमा से रहित है, वह सीमा में नहीं आता। वह परमात्मा चेतन है। उसी की चेतना से, बेटा ! यह शून्य जगत्, चैतन्य जगत्, यह सर्वत्र क्रियाशील दृष्टिपात् आ रहा है। यह सर्वत्र क्रियाशील है, क्रिया कर रहा है। प्रत्येक परमाणु क्रिया कर रहा है, प्रत्येक अणु क्रिया कर रहा है, प्रत्येक शब्द अपनी क्रिया कर रहा है, प्रत्येक प्राण अपनी क्रिया कर रहा है। मन अपनी क्रिया कर रहा है। विचार यह कि सर्वत्र ब्रह्माण्ड, मेरे प्यारे ! देखो, क्रियाशील है, अपने-अपने आसन पर क्रीड़ा कर रहा है।

पदार्थों का रूपान्तरण

मुनिवरो ! देखो, एक-एक सूत्र क्रिया में लगा है। एक मानव वस्त्रों का निर्माण कर रहा है। एक मानव उन वस्त्रों को धारण कर रहा है। परन्तु जब उस वस्त्र का रूपान्तर हो जाता है अथवा उस वस्त्र का स्थूल रूप समाप्त हो जाता है तो उसका जो कण है जो एक-एक कण में अपने में रमण कर गया है, वह अपने स्वरूप में गति कर रहा है। वह परमाणु रूपों में गति कर रहा है और वे जो परमाणु

हैं, पुनः उनका रूपान्तर होता रहता है। परमाणुओं से पुनः स्थूल बनता है और स्थूल बन करके, बेटा ! पुनः वस्त्रों का निर्माण हो जाता है। तो परिणाम क्या ? मुनिवरो ! देखो, सर्वत्र यह जो ब्रह्माण्ड है, परमात्मा के राष्ट्र में जो पदार्थ हैं अथवा जितना भी जड़-जगत् अथवा शून्य जगत् है इसका रूपान्तर होता रहता है और एक-दूसरे में गतिमान है।

शब्द का महत्त्व

हमने बहुत पुरातन काल में कहा था, मानव अपने मुखारविन्द से शब्दों का उच्चारण कर रहा है परन्तु उस शब्द में गति है। और, **वह शब्द जितना भी सात्विक होता है, जितना भी मार्मिक होता है, जितना वह दर्शनों से गुथा हुआ होता है, उतना ही उस मानव का चित्र शब्द के साथ में जा करके, बेटा ! द्यौ-मण्डलों का निर्माण करता है।** वह द्यौ-मण्डलों का निर्माण कर रहा है। तो विचार क्या ? मुनिवरो ! देखो, जितना भी यह ऐसा शब्द है, वह पवित्र होता है।

बेटा ! वह काल मुझे स्मरण आ रहा है। जब महाराजा अश्वपति के यहाँ विद्यालय में अध्यापन का कार्य करते रहते थे। अध्यापन में, एक पंक्ति में ब्रह्मचारी विद्यमान हैं और उसी पंक्ति में राजा का पुत्र है, उसी पंक्ति में प्रजा का पुत्र है, उसी में चारों वर्णों के पुत्र विद्यमान हैं, परन्तु शिक्षा एक ही प्रकार की है। सबसे प्रथम मानव के लिए यह कहा गया है कि हे ब्रह्मचारी ! तू अनुशासन में रह, तेरा अनुशासन विचित्र होना चाहिए। जब बालक अनुशासन में रहता है तो आचार्य उससे पूर्व से ही अनुशासन में रहता है। जब दोनों अनुशासन में रहते हैं तो जैसे मानव का शब्द अनुशासन में गति करके परमाणु अपनी गति में गतिमान हो करके दार्शनिक शब्द, सतोगुणी शब्द द्यौ-लोक को प्राप्त होता है इसीप्रकार मानो विद्यालय ऊँचा बनता है। क्योंकि

देखो वह जो शब्द है वही तो ऊँचा बना रहा है, वही तो इस संसार का निर्माण कर रहा है। पुत्रो ! शब्द ही राष्ट्र का निर्माण कर रहा है, शब्द ही योगी को योगी बना रहा है। शब्द ही, मुनिवरो ! प्राणेश्वर कहलाता है। मानो शब्द अपने-अपने आँगन में ध्वनि के साथ में शब्दों के रूप में परिणत करते रहते हैं।

साधना में अन्न का महत्त्व

हमने बहुत पुरातन काल में कहा था कि इन्हीं शब्दों को मानव जब साधना में प्रवेश करता है तो उस समय सबसे प्रथम वह अन्न के क्षेत्र में प्रवेश करता है। जब अन्न के क्षेत्र में जाता है कि हमारा जो अन्न है वह कैसा होना चाहिए ? बेटा ! उस **अन्न में सर्वयोग प्रयत्न विद्यमान रहते हैं। जितना भी योग-साध्य है, जितना भी परमाणुवाद है, जितने भी, मुनिवरो ! मानव के अंग हैं वे सर्व मानव के अन्न में विद्यमान रहते हैं। आज कोई मानव यह कहता रहे कि अन्न किसी प्रकार का हो उसका विचारों पर अन्तर्द्वन्द्व नहीं होता, परन्तु जब मानव सूक्ष्म क्षेत्र में पहुंचेगा, योग के सूक्ष्म रहस्यों में प्रवेश करेगा वहां उसे अन्न की धाराओं का ज्ञान प्रतीत होता है, अन्न की तरंगों की वहां प्रतीति होती है।**

मेरे प्यारे ! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। राजाओं के राजकोष का ऋषि-मुनि अन्न ग्रहण नहीं करते थे। जो महान् तपस्वी होते हैं, जो ब्रह्मवेत्ता बनना चाहते हैं, राष्ट्र और समाज को ऊँचा बनाना चाहते हैं, प्राण और मन की क्रिया को जानना चाहते हैं, मुनिवरो ! राष्ट्र उन ऋषियों से होता है, राष्ट्र से ऋषि नहीं होता। बेटा ! यह वाक्य तुम्हारे विचार में आना चाहिए। क्योंकि राष्ट्र को जन्म देने वाला ऋषि है। **राष्ट्र को ऋषि जन्म देता है, राष्ट्र ऋषि को जन्म नहीं देता।**

महर्षि याज्ञवल्क्य का अन्न

मेरे पुत्रो ! आज जब हम यह विचारते रहते हैं कि ऋषियों का जीवन महान् और पवित्र होता है, योगी जब प्राण के क्षेत्र में जाता है। मुझे वह वाक्य स्मरण आता रहता है, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज अपने आसन पर विद्यमान रहते। प्रातःकालीन भ्रमण करते, तो मुनिवरो ! देखो, कुछ अन्न लाते। भयङ्कर वनों से उस अन्न को लाते थे जिस अन्न पर किसी भी प्राणी का अधिकार नहीं रहता था। केवल प्रकृति और परमात्मा का उस पर आधिपत्य रहता था। तो मेरे प्यारे ! देखो, उसको पान करते थे और पान करके ऊंची उड़ान उड़ते रहते थे और उनकी कैसी उड़ान रहती थी? वे ब्रह्म में, प्राणों में, मनों में, बेटा ! विचरण करते रहते थे।

अन्नमय कोष

मेरे प्यारे ! देखो, सबसे प्रथम मानव को, साधक को यह विचारना है कि हमारा अन्न कैसा होना चाहिए ? जिसे 'अन्नमय कोष' कहा जाता है। अन्न के कोष के विचारों में जाना चाहिए। मेरे प्यारे ! अन्न के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि **अन्न का निर्माण करने वाली मेरी प्यारी माता भी पवित्र होनी चाहिए। अन्न का पान करने वाला भी विचारों में पवित्र होना चाहिए। जिस प्रकार का, जिस भूमि का, जिस स्थली का अन्न होता है, वह भी उतना ही पवित्र होना चाहिए।** तो तीन धाराएं अन्न की होती हैं, उस अन्न में तीन प्रकार की तरंगें होती हैं, वे तरंगें ही मुनिवरो ! साधक को ऊँचा बनाती हैं।

मुझे मेरे प्यारे महानन्द जी ने एक समय वर्णन करते हुए कहा था कि अन्न का प्रभाव आज का समाज स्वीकार नहीं करता। मैं यह कहा करता हूँ कि जीवन का हमारा कुछ सूक्ष्म सा अनुभव यह है कि

अगर अन्न पवित्र नहीं होगा तो कोई मानव ऋषि बन ही नहीं सकता। क्योंकि मुझे वे काल स्मरण आते रहते हैं, जिन कालों में ऋषि और मुनि थे, दो प्रकार की धाराएं होती हैं। एक मानव ऋषि कहलाता है, एक मुनि कहलाता है। एक मानव देखो, वृत्तियों में रमण करने वाला साधक कहलाया जाता है, प्रत्येक मानव को साधक बनना है। साधक बनने वाला प्राणी, मेरे प्यारे ! मानवता में ऊँचा रहता है। इसलिए विचार-विनिमय क्या ? वेद का आचार्य यह कहता है, वेद का ऋषि यह कहता है, आचार्य यह कह रहा है कि **हे मानव ! तू अपनी मानवता में इतना ऊँचा बन, साधक बनना है तो इतना महान् बन कि तेरे व्याकरण की ज्योति भी मानो जो अन्न तेरे मस्तिष्क में, जो तेरे त्रिवेणी के स्थान में दो कृतिका होती हैं, वह जो कृतिका स्वरों में अपना स्वर ध्वनियाँ करती रहती हैं, हे योगी ! तू उस अन्न को अपने में ग्रहण कर।** तू अपने श्रोतों को बाह्य जगत् से आन्तरिक जगत् में लगा। उस अन्न को तू स्वीकार कर जिससे तेरा जो व्याकरण है, तेरी जो स्वर-तरंगें हैं वह देखो ब्रह्माण्ड की तरंगें तेरे समीप आती रहें। परन्तु देखो आज मैं तुम्हें इतने गम्भीर क्षेत्र में नहीं ले जाऊंगा।

अन्न की तीन धाराएं

केवल विचार-विनिमय यह कि अन्न की तीन धाराएं हैं। अन्न पवित्र होना चाहिए। **जब मानव का अन्न पवित्र हो जाता है तो मुनिवरो ! उसकी स्वतः ही तीन धाराएं बननी प्रारम्भ हो जाती हैं।** तीन धाराएं क्या हैं ? तीन धाराओं को बनाने वाला कौन है ? वह अन्न है, क्योंकि उसी से तरंगें उत्पन्न होती हैं और अन्न के शरीर में जाने के पश्चात् तीन प्रकार के भाग स्वतः बन जाते हैं। **एक भाग तो स्थूल बन जाता है। स्थूल का स्थूल में रमण कर जाता है। द्वितीय भाग रक्त में परिवर्तित हो जाता है और तृतीय भाग तरंगों में ओत-प्रोत**

हो जाता है। यह मुनिवरो ! देखो, अन्न के तीन प्रकार से, तीन प्रकार की धाराएं स्वतः निर्मित हो जाती हैं और वह जो स्थूल है, मुनिवरो ! वह तो पृथकता को प्राप्त हो गया और जो रक्त का संचार है मानो वह गति को प्राप्त हो गया, मेरे प्यारे ! वह गतिवान बन गया और वह जो तरंगें हैं, वे अन्तरिक्ष का निर्माण करती रहती हैं। तो विचार-विनिमय क्या ? कि वे जो तरंगें हैं उन्हीं तरंगों से मानव को जिसको त्रिवेणी का स्थान कहते हैं वहां कृतिका होती है, दो होती हैं परन्तु मध्य में एक धारा कृतिका होती है। जब वह रमण करने लगती हैं, वह साधक को इतना प्रकाश में ले जाती हैं, वह महान् ऊंचे जगत् में ले जाती हैं।

मेरे पुत्रो ! देखो, अन्नमयी कोष की तीनों जो श्रेणियां हैं, इन कोषों की तीन जो धाराएं हैं वह अपने-अपने कोष को एकत्रित करना प्रारम्भ करती हैं और प्रारम्भ करके, बेटा ! देखो, जो मानव की ब्रह्माण्ड की कल्पना, मुनिवरो ! देखो, मानव अपनी तरङ्गों में ओत-प्रोत हो करके उन कृतिकाओं में रमण करके, बेटा ! देखो, अपने में वह अनुभवी बन जाता है। वह स्वतः उसमें रमण करने लगता है। जब उसमें रमण करता है तो सर्व ब्रह्माण्ड का जो चक्र है उसको वैज्ञानिक नाना प्रकार की तरंगों से ही नहीं, नाना प्रकार के परमाणुओं के मिलान से नहीं जान सकता।

वह जो योगी है वो जो सारे ऋच और यन्त्र उनका जो निर्माण है, उसमें प्राण और मन दोनों की टुक्टुकियां, (संयुक्त क्रिया) दोनों का प्रहार होता है, मुनिवरो ! यह जो ब्रह्माण्ड है, जो ब्रह्माण्ड हमें दृष्टिपात् आ रहा है, लोक-लोकान्तरों वाला जगत् है उसको वैज्ञानिक यह कहते हैं कि एक दूसरा ब्रह्माण्ड एक-दूसरे में गति कर रहा है। एक-दूसरी आभा, आभा में रमण कर रही है।

मुनिवरो ! देखो, यह जो प्राण है और मनुष्यत्व है इन दोनों का सन्निधान, दोनों का सम्मेलन होने से एक-दूसरा गति करके, मुनिवरो ! मानव बाह्य जगत् में, आन्तरिक जगत् के ब्रह्माण्ड की कल्पना करने लगता है और वह सर्वत्र ब्रह्माण्ड की जो कल्पना है, वह कल्पना बन करके ही नहीं रहती; वह अपने स्वरूप में गति करने लगता है, अपने स्वरूप में ही अनुभव करने लगता है। अपने ही स्वरूप में पृथ्वी के गर्भ में जब वह जाता है, अपने ही स्वरूप में वह आपोज्योति के गर्भ में चला जाता है और वह अपने स्वरूप में अग्नि की धाराओं में, अग्नि की ज्वालाओं में निहित हो जाता है। अग्नि की तरंगों में रमण करने लगता है। अपने ही स्वरूप में वह जो योगेश्वर है, वह वायु और अन्तरिक्ष दोनों के परमाणुओं को जानता हुआ इस ब्रह्माण्ड की सर्वत्र कल्पना उसके समीप आनी प्रारम्भ हो जाती हैं।

पवित्र अन्न का रथ

मेरे पुत्रो ! आज मैं तुम्हें साधना की चर्चा करने आया था। **साधना की चर्चा तो प्रारम्भिक यह है जो बेटा ! मैंने तुम्हें उच्चारण किया कि अन्न पवित्र होना चाहिए। अन्न से ही, मुनिवरो ! रथ बनता है। वह साधना का एक रथ बनता है और उस रथ में विद्यमान होने वाला कौन है ? मेरे प्यारे ! जीवात्मा है, जीवात्मा, बेटा ! रथ पर विद्यमान हो करके ब्रह्मा के द्वार को चलता है, ब्रह्म के आंगन को चलता है और जब ब्रह्म के आंगन को चलता है, तो मुनिवरो ! ब्रह्म के आंगन में उस रथ में विद्यमान होने वाले जीवात्मा के समीप पृथ्वी के जो आठों अंग हैं, योग के जो आठों अंग है, पंखुड़ियों से रथ का निर्माण होता है। आठों जो अंग हैं योग के, धारणा में, समाधि में; धारणा, ध्यान, समाधियों में परिणत होता हुआ वह ऐसे रथ में जीवात्मा विद्यमान हो जाता है कि उस रथ का जो गमन है वह ऊर्ध्वगति को जा रहा है।**

वह जो विमान है साधक का, मुनिवरो ! देखो, वह ऊर्ध्वगति को जा रहा है। 'अष्टचक्रा नव द्वारा' देखो, आठों जो चक्र हैं वह आठों में जो ब्रह्मात्मा हैं, ब्रह्मात्मा क्यों कहलाता है ? क्योंकि उसका जो विचार है, उसका जो उत्थान है वह ब्रह्म के लिए होता जा रहा है। तो मुनिवरो ? यह जो आठों प्रहरी हैं, यह आठों चक्र हैं इनको पार होता हुआ, "ओम् भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः सत्यम्", इनमें रमण करता हुआ एकाकी सत्य में रमण करता हुआ, मुनिवरो ! वह आठों अंगों को पार करता हुआ, आठों चक्रों को पार करता हुआ, वह सत्य में रमण करता है। उसे संसार में मिथ्या प्रतीत नहीं होता सर्वस्व क्योंकि वह स्वयं शब्द है, शब्द की कल्पना है, शब्द का साथी बना हुआ है और मुनिवरो ! **यह ब्रह्माण्ड उसे सत् ही सत् प्रतीत होने लगता है। हे प्रभु ! यह सत् ही सत् है। मानो क्रिया है, क्रिया में सत्यता है और वह जो सत्य है उसमें मिथ्यावाद नहीं होता, अन्तर्द्वन्द्व नहीं होता, वहां अन्धकार नहीं होता। क्योंकि प्रभु के राष्ट्र में, बेटा ! प्रकाश ही प्रकाश रहता है, वहां अन्धकार नहीं होता।**

आओ, मेरे प्यारे ! मैं विशेष चर्चा तुम्हें प्रकट करने नहीं आया हूँ। विचार देना केवल यह चाहता रहता हूँ कि आज हम, मुनिवरो ! आठ चक्रों, नव द्वारों जिनके ऊपर मानो संयम करना चाहते हैं इनके ऊपर संयम करते हुए नाना प्रकार की धाराओं में, पंखुड़ियों में रमण करना चाहते हैं। मेरे पुत्रो ! आज का हमारा विचार यह क्या कह रहा है ? मैंने अभी-अभी कुछ तुम्हें सूक्ष्म परिचय दिया है और वह परिचय क्या है ? कि **'अन्नादम् भूतं प्रवेः।' अन्न पवित्र होना चाहिए। अन्नमय जो कोष है, इसी कोष को हमें सबसे प्रथम जानना है।**

प्राणमय कोष

उसके पश्चात्, अन्न कोष के पश्चात् मुनिवरो ! वह 'विप्रः

लोकः' प्राणों में रमण करता है, प्राणों को जानता है, एक-दूसरे में प्राणों को जानता हुआ, वे जो तरंगें हैं उन्हीं तरंगों में प्राण ओत-प्रोत रहता है। वह 'प्राण कोष' में रमण करता है, साधक उनका मिलान मिलाता है। **साधक मिलाता नहीं है, वह तो स्वतः अन्नमय कोषों के साथ-साथ प्राणमय कोष में रमण करता रहता है। स्वतः ही उसे अप्रः प्राप्त होती रहती है।**

मनोमय कोष

उसके पश्चात्, वह 'मनोमय कोष' में चला जाता है। यह जो मानव के द्वारा जो मन है, यह मन प्रकृति का सूक्ष्म तन्तु माना जाता है। सबसे सूक्ष्म तन्तु है। उस तन्तु को जानने वाला क्योंकि इसी मनों में, मेरे प्यारे! सर्व-ब्रह्माण्ड क्या, मानो जितना भी यह परमाणुवाद, सृष्टिवाद है, यह मन की ही रचना है और मन ही, मुनिवरो! इसमें निहित रहता है। यह मन ही इनको एकत्रित करता है। वह कोष कहलाता है, 'मनोमय कोष' कहलाया जाता है। वह जो मनोमय कोष है, मेरे प्यारे! जितना भी प्रकृति का यह प्रपंच है, जितनी भी प्रकृति की यह रचना है, चाहे वह अणुवाद में है, परमाणुवाद में है, मेरे प्यारे! यह मन सबकी रचना, सबका निर्माण करने वाला है। विभक्त करने की क्रिया इसमें विशेष है, विभक्त क्रिया का कोष इसमें विद्यमान रहता है। चाहे वह पृथ्वी में विभाजन होना हो, चाहे विचारों में विभाजन हो रहा हो, चाहे परमाणुवाद में विभाजन हो रहा हो, चाहे, मेरे प्यारे! लोक-लोकांतरों के रूप में विभाजन हो रहा हो, चाहे अग्नि के रूप में विभक्त क्रिया दृष्टिपात् हो रही है। यह विभाजन करने वाला, कौन? प्रकृति का एक सूक्ष्म तन्तु, एक तरंग है, जिस तरंग को मेरे प्यारे! मनस्तत्त्व कहा जाता है। वह मन है उसे 'मनोमय कोष' कहते हैं, जो विभाजन कर रहा है। वो विभक्तता जिसमें भी है, वह सब मनों के कारण है।

मेरे प्यारे ! यह विभाजनवाद उस काल में त्यागता है, जिस काल में, बेटा ! प्राणों से इसका मिलान हो जाता है। प्राणों में जब इसकी विचारधारा उसके गर्भ में परिणत हो जाती है। तो मेरे प्यारे ! मन का वाहक समाप्त हो जाता है, मन की धाराएं, मन का विभक्त होना, मन में विभाजनवाद की क्रियाएं समाप्त हो जाती हैं। मन की आभा समाप्त होने के पश्चात्, मेरे पुत्रो ! मानव शून्य गति को प्राप्त होता है। परन्तु वह जो आत्मा इन तीनों चक्रों की आभाओं में विद्यमान है, प्राणोमय कोषों को त्याग रहा है, मुनिवरो ! मनोमय कोषों को त्याग रहा है, वह कहाँ जा रहा है ?

विज्ञानमय कोष

जो मन के पश्चात् 'विज्ञानमय कोष' की प्रतिभा आती है। यह जो विज्ञान है, मुनिवरो ! यह दो प्रकार का माना गया है। एक विज्ञान वह कहलाता है, जिसे भौतिकवाद कहते हैं, जिसमें परमाणु विद्या है। मानो वह मन के अन्तर्गत ही आती है। परन्तु एक विचारधारा, एक विज्ञान की तरंगें हैं, जो यौगिक कहलाती हैं। एक रूढ़ि होती है, रूढ़ि वह कहलाती है जो प्रकृति के सन्निधान से आती है, जो मनस्तत्त्व के सन्निधान से आती है। परन्तु देखो यौगिक वह होती है जो, मेरे प्यारे ! अनुभव में आती है। वहाँ मनस्तत्त्व काम नहीं आता। वहाँ केवल आत्मा में परमात्मा के गुण आने प्रारम्भ हो जाते हैं। मुनिवरो ! जैसे अग्नि में लौ देने के पश्चात् उसमें अग्नि के परमाणु आने प्रारम्भ हो जाते हैं, अग्नि के परमाणुओं से वह अग्नि का स्वरूप धारण कर लेती है। जब अग्नि के स्वरूप को धारण कर लेती है तो मुनिवरो ! अग्निमय बन जाती है इसी प्रकार आत्मा जो चेतना है वह प्रकृति के गुणों को त्याग करके, यह परमात्मा के गुणों में गुणवान् होने लगता है।

आनन्दमय कोष

जब परमात्मा के गुण इसमें प्रवेश कर जाते हैं तो यह विज्ञानमय कोषों को भी त्याग करके आनन्द के क्षेत्र में रमण कर जाता है। यह आनन्द ही आनन्द में प्रवेश करता है क्योंकि उसके गुण इसमें विशेष आ जाते हैं। उस आनन्द को सोचता रहता है। उसको हमारे यहाँ 'आनन्द' कहते हैं। क्योंकि परमात्मा 'आनन्द' है, परमात्मा में विडम्बना नहीं है। परमात्मा स्वतः आनन्द है। उस आनन्द को प्राप्त करके जीवात्मा आनन्द के क्षेत्र में विभोर हो जाता है। ब्रह्माण्ड उसके लिए खिलवाड़ बन जाता है। **परमात्मा जैसे रचयिता है और इसमें रमण कर रहा है परन्तु इससे पृथक् भी है। इसी प्रकार आत्मा में उन गुणों का गुणाधान हो जाता है और गुणाधान होने के पश्चात् मानव उस आनन्द में विभोर हो जाता है, अपने में प्रतिष्ठित हो जाता है, अपने में रमण करता रहता है। तो मुनिवरो ! विचार विनिमय क्या ? कि वह योगी बाह्य जगत् में नहीं आता, वो योगी बाह्य जगत् में न आ करके मुनि बन जाता है, वह तो मधुर विद्या में रमण करता है। उस मधु-विद्या में रमण करने वाला, बेटा ! अन्न को जानता है।**

स्थूल, सूक्ष्म और आत्मिक अन्न

विचार विनिमय क्या ? आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा तो प्रकट करने नहीं आया हूँ। यह तो तुम्हें प्रतीत ही है, मैं तो अंकुरों की चर्चा कर रहा हूँ, मैं वृक्ष की चर्चा नहीं कर रहा। जिन अंकुरों से वृक्ष बनता है, केवल साधना की चर्चा कर रहा था। **हे साधक ! यदि तू साधना में जाना चाहता है, साधना को जानना चाहता है, साधना में प्रवेश करना चाहता है तो सबसे प्रथम मौन हो करके तेरा अन्न पवित्र होना चाहिए।** अन्न का अभिप्रायः यह है कि जो भी कुछ तुम भक्षण करते हो, जिससे तुम्हारी तृप्ति होती है, वह सर्वत्र अन्न माना गया है। मैंने

बहुत पुरातन काल में निर्णय देते हुए कहा था कि संसार में दो प्रकार के अन्न होते हैं। एक अन्न वह होता है जो, मुनिवरो ! योगेश्वर पान करता है। एक अन्न वह होता है, जिसको पान करने से मानव स्थूलता को प्राप्त होता है।

तो मुनिवरो ! दो प्रकार का अन्न नाना रूपों में रमण कर रहा है। एक अन्न आत्मा का है और एक अन्न शरीर का है। अहाः, स्थूल अन्न को पान करने से मानव का शरीर स्थूल बनता है। 'सूक्ष्म ब्रह्मः' आत्मा का ज्ञान-विज्ञान है। जो आध्यात्मिकवाद है, आध्यात्मिक चर्चाएं हैं वह आत्मा का भोजन है। इन दोनों प्रकार के भोजों को हमें ऊँचा बनाना है। दोनों प्रकार के भोजन को महान् बनाना है। जिससे दोनों प्रकार के भोजन को हम पान करते हुए, यह जो संसार है यह दोनों प्रकार का भोज लेकर के अपने में प्रतिष्ठित हो जाता है।

महर्षि दधीचि का सूक्ष्म-फलाणु-पान

आओ, मेरे प्यारे ! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। एक समय, बेटा ! मुझे महर्षि विभाण्डक मुनि, महर्षि दधीचि से कुछ चर्चाएं करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। महर्षि दधीचि मुनि महाराज जब भयंकर वन में विद्यमान रहते थे तो एक समय कहा गया, महाराज ! तुम भयंकर वन में रहते हो, क्या पान करते हो ? उन्होंने कहा मैं अन्न को पान करता हूँ। वह ऐसा विचित्र था। महात्मा दधीचि ने प्राणायाम किया और प्राणों का एक सूत्र मिलाया, मुनिवरो ! वायु-मण्डल में जो परमाणु गति करते हैं उन परमाणुओं से अपने भोजनालय की तृप्ति कर लेते थे, उसी से वह तृप्त हो जाते थे और तृप्त हो करके, मुनिवरो ! देखो जैसे कोई मानव 'अन्नमय कोष' को जानता है, 'प्राणमय कोष' को जानता है, दोनों कोषों का मिलान करना जानता है, जैसे फल विद्यमान हैं, तो मुनिवरो ! देखो, अपने नेत्रों की ज्योति का, दोनों का एक तारतम्य

मिल जाता है और तारतम्य मिल करके उस समय वह सूर्य प्राणायाम करता है और सूर्य प्राणायाम करता हुआ उसमें खेचरी मुद्रा लगाता है। तो वह साधक फलों के सूक्ष्म अणु को अपने में धारण कर लेता है, वह अपने में तृप्त हो जाता है।

सूक्ष्म अन्न और साधना

साधना की जहाँ चर्चाएं हैं, मैं इस गम्भीर और विचारणीय क्षेत्र में जाना नहीं चाहता हूँ। मुझे वह काल स्मरण आता रहता है कि मानव साधना में क्या-क्या कर सकता है? जब साधना प्रारम्भ करता है तो सबसे प्रथम अन्न को सूक्ष्म और स्थूल दोनों प्रकार के अन्नों को जानता है। सूक्ष्म अन्न कैसा होता है और स्थूल अन्न कैसा होता है ? **स्थूल अन्न जो है, वह मानव के शरीर को बलिष्ठ बनाता है। सूक्ष्म जो अन्न है वह प्राण को ऊँचा बनाता है।** जब प्राण ऊँचा बनता है तो उससे मनोबल आता है। जब मन ऊँचा होता है तो मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार एक सूत्र में आ जाते हैं। चित्त में जो मन का कोष है, 'मनोमय कोष' है, वह कैसा कोष है ? मेरे प्यारे ! वह इतना विचित्र है कि करोड़ों-करोड़ों जन्मों के संस्कार, मुनिवरो ! चित्त में विद्यमान होते हैं। वह मनों का ही तो कोष कहलाता है क्योंकि मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार ये मन की ही धाराएं हैं, ये मन की ही तरंगें हैं। मेरे पुत्रो ! देखो, उसी से अन्तरिक्ष का निर्माण होता है। उसी से वह नदियों का निर्माण कर लेता है, उसी से वायु का निर्माण कर लेता है। उसी से अग्नि का निर्माण कर लेता है। वही, मुनिवरो ! नाना निर्माण करता हुआ, इस चित्त में जो संस्कार हैं, उन संस्कारों को वह सूक्ष्म बना देता है और स्वतः सूक्ष्म बन करके मानव विज्ञान के आध्यात्मिक क्षेत्र में रमण करता है। आध्यात्मिक क्षेत्र में रमण करता हुआ वह परमपिता परमात्मा के आनन्द को प्राप्त करता रहता है।

आओ मेरे प्यारे ! सूक्ष्म अन्न से मानव का प्राण ऊँचा बनता है, प्राणों से मन ऊँचा बनता है और जब मन पवित्र और ऊँचा बन जाता है, तो इसमें चंचलता नहीं रहती, विडम्बना रहीं रहती। यह विज्ञानमयी तरंगों में ओत-प्रोत होता हुआ यह आत्मा आनन्द को प्राप्त होता है। तो विचार-विनिमय क्या ? आज मैं तुम्हें बहुत सूक्ष्म रहस्य में ले गया हूँ, तरंगों में ले गया हूँ। परन्तु इसका एक-दूसरे से सन्निधान, एक-दूसरे से मिलान करने की आवश्यकता नहीं रहती। मानव का प्रारम्भिक जीवन ऊँचा बन जाता है। प्रारम्भिक साधना ऊँची बन जाती है। प्रारम्भिक साधना में, मेरे प्यारे ! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है। जब हम अपने पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा उनके चरणों में ओत-प्रोत हो करके उनके चरणों की वन्दना करते रहते थे, अध्ययन करते रहते थे। जब प्रश्न करते थे तो मेरे प्यारे ! वह पुनः सुन्दर उत्तर देते थे। जब वह उत्तर दिया करते थे उससे, मुनिवरो ! हमारा आत्मा पवित्र हो जाता और पूज्यपाद गुरुदेव से यह कहा करते थे—प्रभु ! हमें साधना में परिणत करा दो, हम साधना में प्रवेश करना चाहते हैं।" तो पूज्यपाद गुरुदेव हमें प्राणों की धुकधुकी दिया करते थे, अन्न की धुकधुकी दिया करते थे।

अन्न, मन और प्राणायाम-साधना

अन्न और प्राण का, दोनों का सम्बन्ध है क्योंकि प्राण ही तो अन्न को निगल जाता है, प्राण ही संसार को निगल जाता है। यह प्राण ही है, मेरे प्यारे ! जो प्रकृति को अकिंचन बना देता है। यह प्राण ही है जो विस्तार रूप बना देता है, यह प्राण ही है जो अन्तरिक्ष में उड़ान उड़ने लगता है। तो यह प्राण ही प्राण पर अपना कार्य करता है। प्राण का जो भोज है वह अन्न है। अन्न को प्राण पान करता है क्योंकि अन्न उसी में समाहित हो जाता है।

मेरे प्यारे ! जब अन्न प्राण में समाहित हो जाता है, प्राण मन में समाहित हो जाता है और क्योंकि जब प्राण के स्वरूप में जब यह मन प्रवेश कर जाता है इसीलिए हमारे ऋषि-मुनि प्राणायाम किया करते हैं। **प्राणायाम करने वाला जो महापुरुष होता है उस प्राणायाम करने वाले को कोई रोग नहीं होता। प्राणायाम करने वाले को बेटा ! विडम्बना नहीं होती। प्राणायाम करने वाले का संसार में कोई शत्रु नहीं होता। प्राणायाम करने वाले का संसार भी मित्र बन जाता है क्योंकि यह प्राण ही संसार में ओत-प्रोत हो रहा है। जब यह प्राण ही प्राण है तो कौन इसका शत्रु बन पाएगा।**

यह प्राणायाम कहाँ किया जाता है ? यह मन ही तो प्राण में समाहित हो जाता है और जब यह मन प्राण में समाहित हो जाता है तो विभक्त क्रिया समाप्त हो जाती है। जब विभक्त क्रिया नहीं रहती तो राग-द्वेष नहीं रहता, जब राग-द्वेष नहीं रहता और प्राण मन में प्रवेश कर गया है तो उसका कोई शत्रु नहीं और जब शत्रु नहीं तो बेटा ! वह संसार का मित्र बन जाता है। आओ मेरे पुत्रो ! हमें विश्वामित्र बनना है। विश्व का मित्र बनना है तो हम उस काल में बनेंगे जब हम प्राणायाम करेंगे, जब अपनी साधना को ऊँचा बनाएंगे।

जो मानव साधना में ऊँचा बनता है तो मुनिवरो ! वह अन्न से बनता है। **अन्न से प्राण और प्राण से मन ऊँचा बनता है और जब यह तीनों एक सूत्र में आ जाते हैं, आत्मा इनके ऊपर विश्राम करता रहता है। उसमें चेतना के गुण आने प्रारम्भ हो जाते हैं। मानो उसमें परमात्मा का ज्ञान, परमात्मा के गुण इसमें प्रवेश होने प्रारम्भ हो जाते हैं। उसके पश्चात् यह विज्ञान के क्षेत्र में न रह करके परमात्मा के आनन्द में प्रवेश कर जाता है।**

मुनिवरो ! आजका हमारा यह विचार क्या कह रहा है ? हमारे

विचारों की धारा क्या कह रही है ? हमें उस परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए चेतना में प्रवेश करते हुए, मेरे पुत्रो ! हमें परमात्मा के क्षेत्र में जाना है, आराधना करनी है। मुनिवरो ! हमें यथार्थ ज्ञान और विज्ञान में प्रवेश करना चाहिए। आओ पुत्रो ! मैं विशेष चर्चा प्रकट करने नहीं आया हूँ। आज मैं तुम्हें यह चर्चा करने के लिए आया हूँ कि प्रत्येक मानव को अपने जीवन में ऊँचा बनना है, प्रतिष्ठित बनना है। आत्मा को परमात्मा के ध्यान में प्रवेश कराना है। मुनिवरो ! आज मैं सूक्ष्म सी चर्चा देने आया हूँ।

मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ, न मैं बुद्धिमान हूँ, केवल संक्षिप्त परिचय देने आया हूँ। संक्षिप्त परिचय क्या है ? कि यह पंच महाकोषों का जो परिचय है जिसके वृक्ष बना-बना करके, बेटा ! किसी काल में मैं प्रकट करूंगा। यह सब गुरुओं से वस्तु प्राप्त होती है। **हे मानव ! तू गुरुओं की शरण में चल। अन्न को जान। वह जो कृतिका है, जिसे त्रिवेणी स्थान कहते हैं, जहाँ गंगा, जमुना, सरस्वती तीनों का मिलान होता है वह जो कृतिका है उनको जानने का प्रयास करके तू सोम-रस को पान करने वाला बन। वह जो सोम रस है, जो अन्तरिक्ष के अन्तिम छोर से आता है जो तेरी साधना का प्रतीक है। तेरी साधना तेरे अन्न से प्रारम्भ होगी। अन्न से तेरा विचार बनेगा। विचारों से तेरे विचार आन्तरिक और बाह्य जगत् में प्रवेश होंगे। बाह्य जगत् और आन्तरिक जगत् जब दोनों बन गए तो हम प्राण के कोष में प्रवेश करेंगे। प्राणमय कोष जब प्रतिष्ठित हो गया तो मनोमय कोष उसके समीप आ गया। तो मुनिवरो ! एक दूसरे में यह प्रतिष्ठित होते हुए, एक-दूसरे में ओत-प्रोत होते हुए अन्तिम बेटा ! देखो उसका छोर आनन्द है। यह आनन्द में मानों सर्व कोष उसमें प्रवेश कर जाते हैं।** यह है, बेटा ! आज का वाक्य। अब मुझे समय मिलेगा, मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा।

कल मेरे प्यारे महानन्द जी कुछ अपने सूक्ष्म विचार प्रकट करेंगे। आज का विचार-विनिमय क्या ? कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, योगीजन उस अन्न को पान करते हैं, जिस पर किसी का अधिकार नहीं होता, वे देवता कहलाते हैं। वह देवपुरियों में रहते हैं। तो मुनिवरो ! देखो "ब्रह्मचरिष्यामि", ब्रह्मचर्य की ऊर्ध्वगति बनाते हैं प्राण के द्वारा, उसके पश्चात् वे मुनि बनते हैं। यह है, बेटा ! आज का वाक्य। अब समय मिलेगा शेष चर्चाएं कल प्रकट करेंगे। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्राय:यह कि परमात्मा का ऐसा अमूल्य क्षेत्र है, ऐसा जगत् है कि कोई भी मानव इसको सीमाबद्ध नहीं कर सकता। यह संसार सीमा से रहित है। यह है, बेटा ! आज का वाक्य। मुझे समय मिलेगा, मैं शेष चर्चाएं कल प्रकट करूंगा।

(मन्त्र-पाठ)

लाक्षागृह, बरनावा,
२२ फरवरी, १६७७
दोपहर ३ बजे
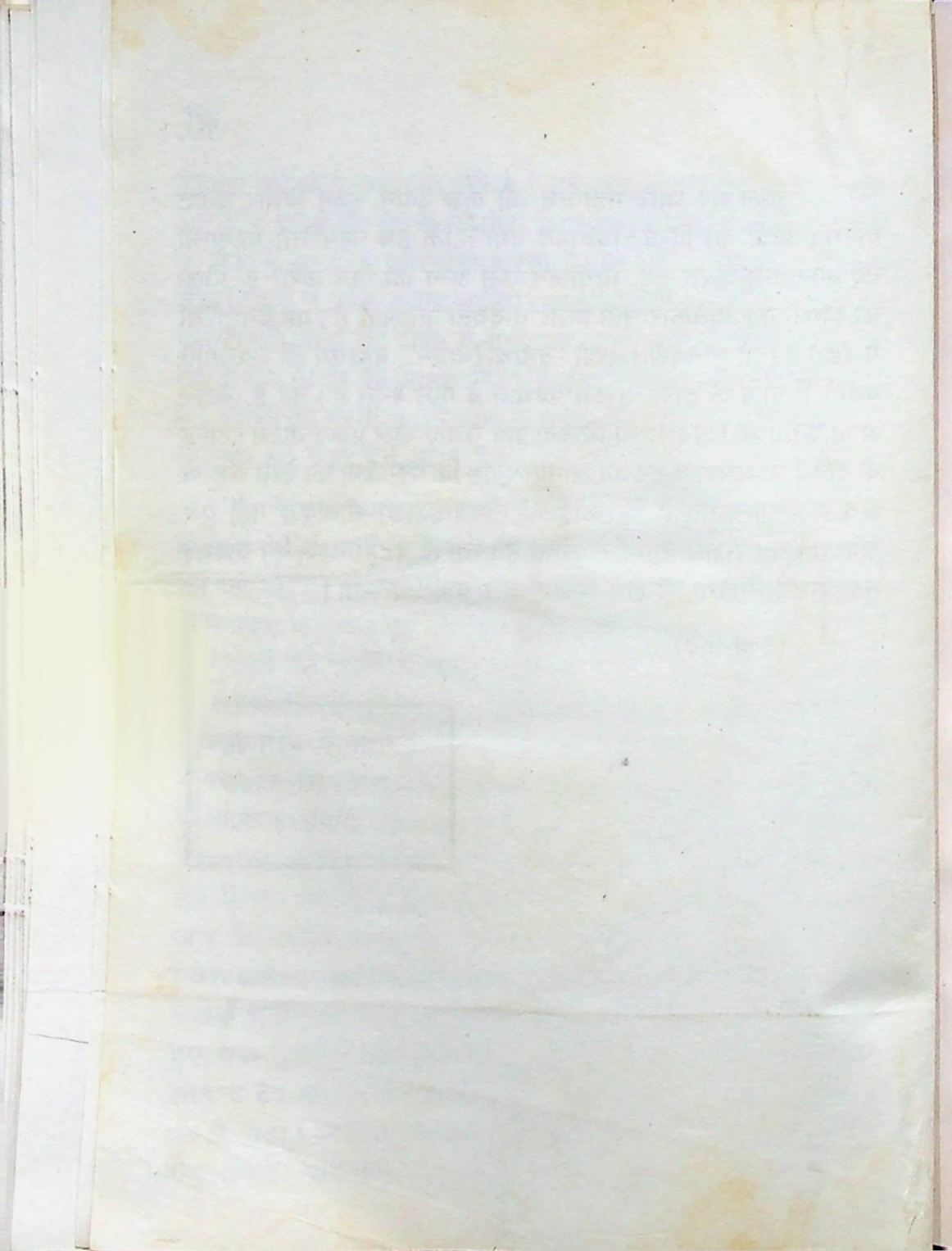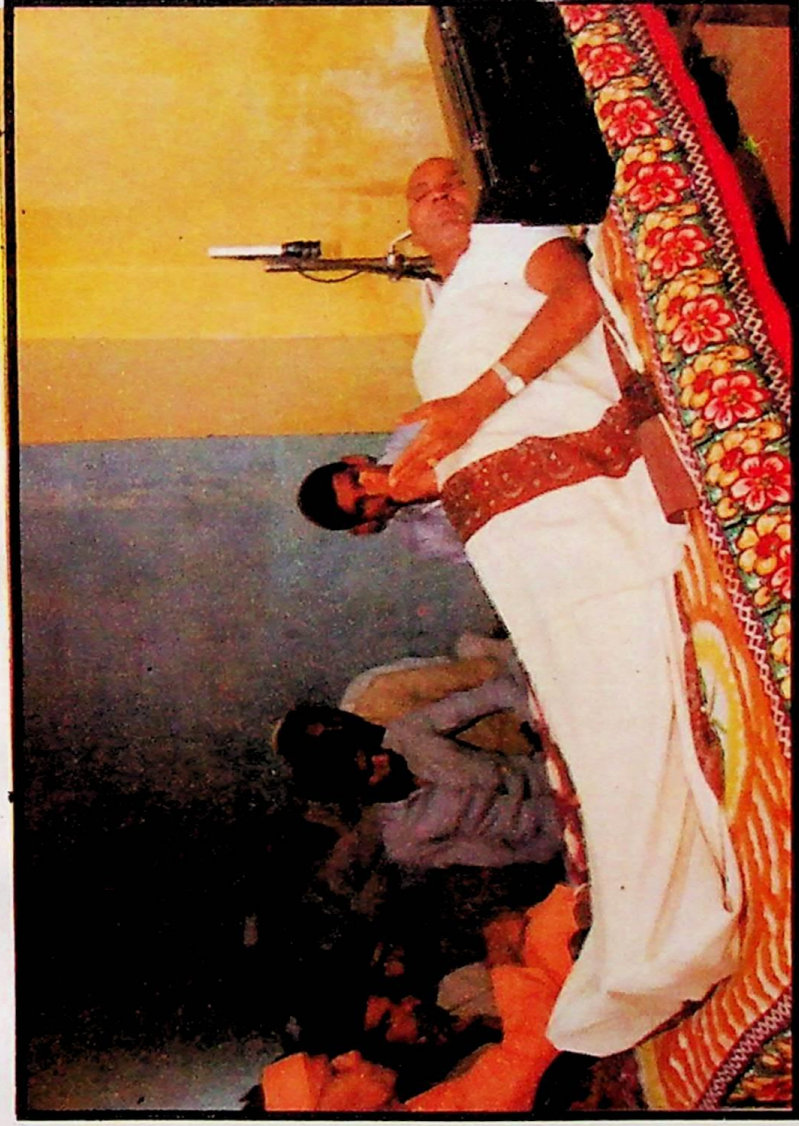
योगमुद्रा में प्रवचन करते हुए पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्ण दत्त जी महाराज

SMC Members .... Registered (Yes/No) ....

Principal Name .... Qualify & Tech Exp. ....

Correspondent Name ....

Financial Position (Last Two Years)

Yr. .... Deficit .... Surplus .... Yr. .... Deficit .... Surplus ....

Pre Requsite for Affiliation

Whether the School is recognised by State Govt. (Yes/No) ....

The NOC is obtained from State Govt. (Yes/No) .... NOC No. & Date ....

Whether school has two acres or more land (Yes/No) .... Total Land ....

The land is on leased/owned .... Validity of lease in years ....

Teachers have prescribed qualify. (Yes/No) .... Trained .... Un-trained ....